योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई–283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 53 : अंक : 9
सितम्बर 2020

प्रकाशन तिथि : 01.09.2020
मूल्य — एक प्रति : 20/- , द्विवार्षिक : 360/-

अमृतकण

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

-गीता 4/24

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है- उस ब्रह्म कर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

◆ ◆ ◆

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।।

-गीता 4/25

दूसरे योगीजन देवताओं के पूजनरूप यज्ञ का ही भली भाँति अनुष्ठान किया करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मा रूप अग्नि में अभेददर्शन रूप यज्ञ के द्वारा ही आत्मरूप यज्ञ का हवन किया करते हैं।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।

(गीता)

सर्वत्र समदर्शन वाला योगयुक्त योगी सब भूतों में अपने को तथा अपने में सब भूतों को अवस्थित देखता है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विचरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 53 सितम्बर 2020 अंक : 6

असारः खलु संसारो

असारः खलु संसारो दुखःरूपी विमोहकः।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाज्ज्वलतेऽनिशम्।।
न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनिरेकान्तजीविनः।।

अर्थात्

यह संसार असार है। यह अत्यन्त दुखःरूप और मोह में डालने वाला है। पुत्र किसका? स्नेहवान पुरुष रात-दिन दीपक के समान जलता रहता है। इन्द्र को और चक्रवर्ती राजा को कुछ भी सुख नहीं है। सुख नहीं है। सुख है तो केवल एकान्तजीवी विरक्त मुनि को।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख**- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	9
3.	**श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा**- डॉ. विजय सिंह	13
4.	**भुवनों का स्वरूप**- डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी	16
5.	**भजन**- श्री पं. प्राणनाथ शर्मा	23
6.	**गीता ज्ञान हृदय में धारो**- धर्माचार्य दण्डीस्वामी कोमल देव आश्रम	24
7.	**नाचिकेतोपाख्यान**- श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री	25
8.	**योग-शास्त्र में मुद्रा**- डॉ. ऋषिराज वाशिष्ठ	33

■■■

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

विशेष लेख—

योगियों की अचिंत्यशक्ति

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अभी गोपी चन्द भर्तृहरि की कथा तुम लोग सुन रहे थे। यूँ तो हजारों सिद्ध हिमालय में अजर अमर हैं किन्तु गोपीचन्द भर्तृहरि भी महासिद्ध हैं। तपस्वियों को ही उनके दर्शन होते हैं, **'मातृवान् पितृवान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'** यदि मातायें बचपन में ही बच्चों को रसिकता की बातें सिखा दें या भूतप्रेत–चुड़ैल का भय दिखाती हैं तो बच्चा आजीवन डरपोक बना रहेगा। यदि मदालसा की तरह बच्चे का **'शुद्धोऽसिबुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि'** का उपदेश बच्चों को दें तो बच्चा अवश्य ही शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जायेगा। हम ऐसे माता–पिता को जानते हैं जिन्होंने अपने बच्चे को बचपन में ही शुद्धोऽसि का उपदेश दिया था और शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया। गोपीचन्द ने अपने गुरुदेव से प्रार्थना की कि वे उनकी बहिन को जीवित कर दें तो उन्होंने चन्द्रावली पर जल का छींटा दिया और वह जीवित हो गई। जो शुद्धमुक्त हो जाते हैं, अजर–अमर हो गये हैं उनको छोड़कर सब के शरीर जाते ही हैं। चन्द्रावली का भी शरीर बाद में गया ही होगा। हमारे देवरहा बाबा डेढ़ दो सौ वर्ष के मौजूद हैं। और भी कई महात्मा हैं। जिन्होंने योग की छोटी–छोटी क्रियाओं का अभ्यास करके अपने को दीर्घायु बना लिया। देवरहा बाबा खेचर सिद्ध हैं ऐसे अनेकों और भी योगिराज हैं जिन्होंने अपने शरीर को अजर अमर बना लिया है। **अन्तवत इमेदेहाः नित्यस्योक्ता शरीरिणः** सभी के शरीर अन्त वाले हैं। यह दूसरी बात है कि योगिराज लोग अपने शरीर को योग शक्ति से महालय तक जिन्दा ले जायें, महासर्ग तक ले जायें और उसके बाद अजर अमर हो जाने के नाते से दिव्य तेजोमय शरीर धारण कर लें और फिर इसी प्रकार से इस कल्प के अन्दर योग करते रहें यह सब कुछ हो सकता है। योगिराज लोग ऐसा करते हैं। तुमने गोपीचन्द की कथा चरित्र में एक खासबात सुनी—वह है गोपीचन्द का वैराग्य—उनका सर्वस्व त्याग। उन्होंने माता का, बहिन का, रानियों का मोह छोड़ दिया। मैंने तुम्हारे सामने कई बार बतलाया है—

निर्मानमोहः जितसंगदोषाः
अध्यात्मनित्या विनिवृत्त कामाः।

द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःख संज्ञै–
गच्छन्त्यमूढ़ा पदमव्ययम् तत्।।

भगवान की इस वाणी के अनुसार उस अव्यय पद को वही प्राप्त कर सकते हैं जो मान और मोह की कीच से निकल जाते हैं। जो असंग होकर अपनी साधना में लगे रहते हैं। अव्यय पद को पा जाते हैं। जिनके साथ थोड़ा भी कुछ भी मान, मोह व संगदोष लगा रहता है, दुनियावी प्रेमप्रीति बनी रहती है वे संसार में जन्म मरण के चक्कर में पड़ा करते हैं। यह दूसरी बात है कि कोई पुण्य के प्रभाव से ऊँचा उठकर स्वर्गादि लोक लोकान्तर में चला जाये ऐसा हो जाया करता है. गोपीचन्द की कथा सुनते हुये मुझे आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के अनेक दिव्य चरित्र याद आ रहे थे। श्री प्रभुजी ने कितने ही मृत व्यक्तियों को जीवित कर दिया। अनेकों को जीवन दान दिया। मुझे इस समय कई घटनायें याद आ रही हैं। मैं तुम्हें उनमें से एक घटना सुनाता हूँ जिसका सम्बन्ध मेरे से भी है–ब्र. गोपालानन्द जी से भी। गोपालानन्द जी और मुल्खराज जी एक दिन अमृतसर आये हुये थे। गोपालानन्द जी ध्यान से उठने के बाद बार-बार कह रहे थे–प्रभु! आप आप ही हैं। मैंने कहा–''भाईजी! आप क्या कह रहे हैं। वे कहने लगे–हम प्रभु जी की महिमा बोल रहे हैं। तुम अभी छोटी उम्र के हो, शायद तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी। मैंने बहुत हठ किया भाई जी बताओ आप किस कारण से ऐसा कह रहे हैं। भाई जी ने बताया–कि आज श्री प्रभुजी ने मानिकचन्द दलाल की बीमारी अपने शरीर पर ले ली है। यदि प्रभुजी उसका संस्कार अपने ऊपर नहीं ले लेते तो कल उसकी मृत्यु हो जाती। मैंने ऐसे परिवार में तथा संस्था में अध्ययन किया था जहाँ सत्य ही बोलना सिखाया गया। मैंने सत्य कहा–मुझे विश्वास नहीं हुआ। यह कैसे हो सकता है कि कोई भोजन करे और दूसरे का पेट भर जाये। ब्र. गोपालानन्द जी ने कहा–अब तुम ऋषिकेश आश्रम जाकर तसल्ली कर लेना। मैंने ऋषिकेश जाकर मानिकचन्द से पूछकर सारी हकीकत जान ली। इसी प्रकार से पं. नन्दलाल को भी लाहौर में श्री प्रभुजी ने जीवन दान दिया था। यह घटना भी मैं कई बार अपने व्याख्यानों में बता चुका हूँ। मुझे अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के दिव्य चरित्र याद आ रहे हैं। एक बार योगेश्वर भगवान कृष्ण यमुना किनारे गायें चराने गये हुये थे। जंगल में घूम रहे थे। यमुना किनारे आकर देखा कि सारे ग्वालबाल और गायें मरी पड़ी हैं। भगवान ने उन सब को देखा और अपनी अमृतवार्षिणी दृष्टि से सबको जीवित कर दिया।

''वीक्ष्य तान् वै तथा भूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः।
इक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्।।''

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने उन ग्वालबालों तथा गौओं को अपनी अमृतवर्षा करने वाली दृष्टि से जीवित कर दिया। यह था उनका योगेश्वर्य। ब्रह्माजी को शंका हो गई कि ये परमात्मा नहीं है। उन्होंने इनकी परीक्षा लेने की दृष्टि से इनकी गौओं को तथा ग्वालबालों को चुरा लिया। भगवान ने देखा मेरी सारी गायें तथा ग्वालबाल गायब हैं। वे ब्रह्मा जी की हरकत समझ गये। उन्होंने अपनी योग शक्ति से—काय निर्माण से उतने ही गौयें तथा ग्वालबाल उत्पन्न कर दिये। किसी को भी इस रहस्य का पता नहीं चला। एक विशेष बात और हुई कि इन बछड़ों को गौयें पहले से ज्यादा प्यार से चाटने लगीं। भगवान की इस अलौकिक योग शक्ति को देखकर संसार वालों ने उनकी पूजा अर्चना शुरू कर दी। क्यों? इसलिये कि उनकी मदद हम पर हो जाये हमारे दुःख दूर हों। हम लोग श्री आनन्दकंद प्रभुजी की आरती पूजा करते हैं ताकि उनकी कृपा हम पर हो जाये और हमें दुःख और संकटों से छुड़ा लें या हम इनकी कृपा से योगी बन जायें। संसार में कोई नेता किसी के पास पहुँचता है यदि उसकी ऊपर तक (शासन) थोड़ी बहुत पहुँच है तो लोग उसका सम्मान करने लग जाते हैं। ये तो मंत्रीजी हैं हमारा काम कर देंगे—करा देंगे। लोग उनके पीछे—पीछे चलते हैं, उनका सम्मान, स्वागत करते हैं क्योंकि राजकीय शक्ति उनके साथ दिखाई देती है। रूक्मिणी—हरण के समय सेना युद्ध में लड़ते हुए राजाओं को तन्द्रा आ गई। क्यों हुआ ऐसा? योग शक्ति के कारण। भगवान ने जयद्रथ वध के समय भी अपनी योग शक्ति का प्रयोग किया। पहले तो चारों तरफ अन्धकार कर दिया फिर तुरन्त सूर्य को प्रकट कर दिया। इसी का नाम है **'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम् सर्वथा शक्तः'**। वृहदरथ—वध के समय भी भगवान का योगेश्वर्य ही दिखाई देता है। **'ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुं समर्थो भवति'** रूक्मिणी हरण के समय भदनी सेना में अद्भुत शक्ति भर दी। मैं रात—दिन अपने व्याख्यानों में बताता रहता हूँ, **'अदीनाः स्याम शरदः शतम्'** योगी का जीवन शक्तियों से परिपूरित रहता है। शक्ति वाले शक्ति तो देते हैं, किन्तु आसुरीवृत्ति से शक्ति एक दिन नष्ट हो जाती है। वाणासुर को अतुलित बल मिला। समाधि में बैठे भगवान शंकर को भी हिला दिया। मेरे साथ लड़ने वाला पैदा करो। ऊषाहरण के समय भगवान ने उसकी सारी भुजायें काट—काट कर उसे शक्ति से शून्य कर दिया। देखो! शक्ति तो मि जाती है। किन्तु पराई शक्ति से कब तक गुजारा करोगे। **'सर्वं परवशं दुखम्'** दूसरे की शक्ति से कब तक काम चलाओगे। मुझे एक घटना याद आई। जिला एटा में एक गाँव में हमारा योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। एक व्यक्ति रोते—रोते मेरे पास आया और रोता ही रहा। मैंने पूछा—भई! क्या बात है क्यों रो रहे हो? वह कहने लगा मैं लुट गया हूँ। हमारे घर में 200 वर्ष पूर्व गोपीचन्द भर्तृहरि

साधु के रूप में आये थे। एक रात वे हमारे घर पर सोये। सुबह एक कागज का चिट लिखकर चले गये। देवताओं का दर्शन अमोघ होता है। सिद्धों का दर्शन अमोघ होता है। यदि ये लोग दर्शन दें तो कुछ देकर जाते हैं। चिट एक तख्त पर लगा गये उसमें लिखा था 'जब तक यह चिट तख्त पर रहेगी इस घर में खूब, धन–सम्पत्ति व सुख रहेगा, अकारण (अकाल) मृत्यु नहीं होगी लेकिन जिस दिन यह चिट नहीं रहेगी तो स्थिति पहले की आ जायेगी। हमारा नाम गोपीचन्द भर्तृहरि है'। उस आदमी ने हमें बताया कि हमारे बाप–दादा ने पक्का कमरा बना दिया उस तख्त पर लगी चिट की खूब संभाल की। एक दिन हमने कमरा धोने के लिए थोड़ी देर के लिये तख्त को बाहर निकाला। हमारे घर में एक ऐसा नालायक पैदा हुआ उसने वह चिट निकाल कर फाड़ दिया किसी बड़े ने उसे ऐसा करते देखा नहीं। जिस दिन से चिट फाड़ दी है, उस दिन से हम बुरी तरह गरीबी से घिर गये हैं, दाने–दाने को मोहताज हो गये हैं। हम आप के पास आये कुछ कृपा करें। हमने कहा—श्री प्रभुजी का चिन्तन करो, पुरुषार्थ करो, जो हो गया सो हो गया। यह थी योगीराज गोपीचन्द भर्तृहरि की शक्ति! कौन थे ये? ये हमारे देश के क्षत्रिय राजा थे। किन्तु योग मार्ग में आ गये और गुरु कृपा से अजर अमर हो गये। आज भर्तृहरि गोपीचन्द हमारे सामने आ जायें तो कौन ऐसा ब्राह्मण होगा जो उनको प्रणाम नहीं करेगा। क्यों करेगा प्रणाम? क्योंकि उनमें योग शक्ति है। उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञ होकर सब कुछ छोड़ दिया एक राजा के लिये बहुत बड़ी बात थी। वे नित्य सिद्धों में हैं। हम यहाँ उनकी बात कर रहे हैं वे सुन रहे हैं। लोग शक्ति की पूजा करते हैं, आदमी की पूजा नहीं करते। ताकत वालों की दुनिया पूजा करती है। हम लोग कृष्ण चन्द्र का दर्शन चाहते हैं। महात्मा लोग उनके लिये जंगलों में पड़े हुये हैं। शक्ति योग के द्वारा पैदा की जाती है। जीव ईश्वर का अंश है, ईश्वर सर्वशक्तिमान है। क्या हम लोगों में शक्ति नहीं होनी चाहिये। देखो! तुम लोग प्रतिदिन मेरी बात सुनते हो। कुण्डलिनी, कुण्डलिनी का जिक्र मैं करता रहता हूँ। योगी की शक्ति कुण्डलिनी है। वह कुण्डलिनी सुषुम्ना के अन्दर सोई हुई है। **'मनुष्यों देवानाम् पशु'** मनुष्य देवताओं का पशु है जब तक कुण्डलिनी सोई हुई है तब तक मनुष्य पशुत्व में रहता है। शक्ति के जाग जाने पर योगी अपनी शक्ति से सारे कार्य कर लेते हैं। देवताओं और मनुष्यों में इतना ही अन्तर है। मनुष्य दूर की देख नहीं सकते, दूर की सुन नहीं सकते। देखो! यदि यहाँ से (कानपुर) दिल्ली हवाई जहाज से जाओगे तो आधे घण्टे में पहुँच जाओगे। देवताओं को मनुष्य लोक की तरह खेती बाड़ी नहीं करनी पड़ती। व्यापार धन्धा नहीं करना पड़ता। कैंसर, अल्सर नहीं होते, वहाँ बुढ़ापा नहीं आता। संकल्प मात्र से सभी वस्तुएँ उपलब्ध हो

जाती है। उनको दिव्य रसायन मिलता रहता है। उनके शरीर अजर–अमर रहते हैं। यूँ (आँख से इशारा करके) देखना चाहें पृथ्वी लोक को देख लें। ये सब देवताओं में स्वाभाविक होती है। आकाश में पक्षी स्वाभाविक उड़ते हैं, मनुष्य ऐसा नहीं कर पाता। देवताओं में ये ताकतें जन्म से होती हैं। इसलिये एक बात को समझो 'पराधीन हूँ सपने सुख नाहीं' दूसरे की पराधीनता में सुख नहीं। दूसरों से शक्ति व वरदान प्राप्त करके भी बहुत दिन तक गुजारा नहीं चलेगा। योग एक ऐसी चीज है, जिसमें किसी से वरदान लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। योगी अपनी शक्ति के आप मालिक होते हैं। **कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्** की ताकत वाले होते हैं; महासिद्ध होकर जंगलों में बैठे हुये हैं। मैं तुम्हें यह बताता रहता हूँ कि योगी की क्या–क्या ताकतें होती हैं। योगी भर्तृहरि–गोपीचन्द की तरह अजर–अमर होकर पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। तुम लोग श्री प्रभुजी के चरण कमलों में आये हो उनकी शक्ति क्या है। यह मैं तुम्हें बताता रहता हूँ। तुम यह मत सोचो वे मूर्तिमान मूर्ति हैं। वे हिमालय में अब भी हैं ही। निर्माणकाय से सोलह शरीर बनकर आये थे योग विद्या का प्रचार करने! देखो! भूल मत करना। योग ही शक्ति प्राप्ति का साधन है। भगवान कृष्ण योगी, रामचन्द्र जी योगी, विष्णुजी योगी, दुर्गा योगिनी, आनन्दकन्द प्रभुजी पूर्ण योगेश्वर हैं। श्री प्रभुजी कहा करते थे–भाँडे मिले पर चौंदे मिले–पात्र तो मिले किन्तु फूटे मिले। सिंहनी का दूध सोने के पात्र में ही टिकता है।

हमारे बच्चों पर गहरी–गहरी शक्तिपात हुये किन्तु बात वही, भाँडे मिले पर चौंदे। मुझे एक बात याद आई। हमने अपने एक बच्चे विद्याराम को, जो आजकल कुण्डौल आगरा में रहता है, योगदीक्षा दी। खूब ऊँचा ध्यान चला उसका। बड़े–बड़े दिव्य अनुभव उनको होते थे। वह सोचने लगा–ध्यान तो जब देखो तब लग जाता है। बस! देखें दो चार दिन ध्यान में न बैठें। इसके बाद ध्यान में बैठा, ध्यान लग गया। फिर महीना दो महीना ध्यान में नहीं बैठा। उसके बाद बैठा तो फिर भी लग गया। साल छः महीने छोड़ने के बाद भी लग गया। किन्तु उसने दो वर्ष तक अभ्यास नहीं किया। उसके बाद ध्यान में बैठा, ध्यान लगा नहीं। कुछ वर्ष बाद हमारा योग प्रचार कार्यक्रम हाजीपुर में चल रहा था वहाँ पहुँचा। कहने लगा–गुरुजी! मेरा ध्यान ही नहीं लगता। मैं [illegible]–क्यों नहीं लगता! उसने सारी हकीकत बताई! उसकी बातें सुनने के बाद मैंने कहा–भाई! ध्यान ने बड़ी गलती की जो वह लगता रहा। महीना दो महीना तुमने ध्यान को छोड़ दिया था उसे भी तुम्हें छोड़ देना चाहिये था। किन्तु उसने गलती की। अब उसने तुम्हें छोड़ दिया। तुम्हें भी ध्यान की जरूरत नहीं। क्या हुआ यह? 'भाँडे मिले पर चौंदे मिले।' पतञ्जलि जी महाराज ने अष्टांग योग का उपदेश

क्यों किया, इसलिये कि साधक पात्र बन जाये। देखो! यम–नियम के पालन की आवश्यकता क्यों है? गुरु के पास थपेड़े खाने की आवश्यकता क्या है? यह इसलिये कि वे उसको सम्हाल कर ठोस भर देंगे और पतन से आगे निकाल लेंगे। कुसम्पर्कों में जाने नहीं देंगे। श्री प्रभुजी एक बार गोपालानन्द जी को स्वर्गलोक ले गये। वहाँ पर वे नाच कूद देखने लग गये। श्रीप्रभुजी छिप गये। ब्र. गोपालानन्द कहने लगे–प्रभुजी! आप कहाँ हैं? प्रभुजी कहने लगे या मुझे ही देख ले या इन्हें ही। कहने का अभिप्राय, एक तरफ माया थी दूसरी तरफ श्रीप्रभुजी थे। श्री प्रभुजी उन्हें घट वापस ले आये। इसलिये जब तक मनुष्य गुरुदेव के नियन्त्रण में नहीं रहता, तब तक नहीं ठीक रहता। इसलिये तो यम–नियमों का साधन करना चाहिए। हम तुम्हें बताते रहते हैं कि एक भी यम–नियम का पालन कर लोगे तो योग की ओर निकल जाओगे, यदि सारों का पालन करोगे तो योगी बनोगे। इसलिये ठोस भाँडे बनो अपने आप को नियन्त्रण में रखो। स्त्री पुरुष की शक्ति होती है। दुर्गा से उत्पन्न है स्त्रियाँ। यदि घर में पति–पत्नी में प्यार है तो सुख सम्पत्ति रहेगी। जहाँ बराबर लड़ाई रहती है। बीमारी, दरिद्रता एवं दुःख घर में रहा करते हैं। जहाँ पति–पत्नी का परस्पर प्रेम रहता है मनु महाराज कहते हैं **'सर्व तद् रोचते कुलम्'** उस कुल में सुख समृद्धि रहती है। पत्नियों को पति की पूजा करनी चाहिये। और पतियों को भी उन्हीं से प्रेम करना चाहिये। इस प्रकार से गृहस्थ में भी पति–पत्नी योगाभ्यास में आगे बढ़ सकते हैं। बस! मेरी इन बातों को सुनकर अपने आपको योग मार्ग की ओर बढ़ाओ। सर्वशक्तिमान अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे। बार–बार आशीर्वाद।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सूचना

आगामी 18 सितम्बर 2020 शुक्रवार से आगामी 16 अक्टूबर 2020 शुक्रवार तक पुरुषोत्तम मास लग रहा है। इसे अधिक मास भी कहते हैं।

इन दिनों में मनुष्य को पुण्य के कार्य करने चाहिये। जाप व ध्यान का क्रम बनाकर अनुष्ठान करना चाहिये। कथा–भागवत् व सत्संग व तीर्थ सेवन भी किया जा सकता है। इन दिनों में किया गया पुण्य अक्षय होता है। अतः साधकों को इसका पूरा–पूरा लाभ लेना चाहिये।

जय सद्गुरुदेव जी की

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्या

—डॉ. विजय सिंह

अब दसम स्कन्ध का उत्तरार्ध प्रारम्भ होता है। कंस के मारे जाने पर उसकी रानियाँ अस्ति और प्राप्ति जो मगधराज जरासन्ध की पुत्रियाँ थीं, वैधव्य लिये पिता के पास रहने लगीं। जरासन्ध को बड़ा क्रोध हुआ। उसने तेइस अक्षौहणी सेना लेकर मथुरा को चारों ओर से घेर लिया।

भगवान श्रीकृष्ण ने धरती का भार उतारने हेतु ही अवतार लिया है, अतः वे विचार करने लगे इस जरासन्ध को मारना नहीं है। इसके सेना को मारना है, जिससे यह पराजित होकर बार-बार असुर वृति वाले नृपों को लेकर हम पर चढ़ाई करता रहेगा और बैठे-बैठे उन असुरों का संहार हम और बलराम जी यहीं करते रहेंगे।

पचासवाँ अध्याय वीर-रस प्रधान है। नवयुवकों को विर्यबल प्रदान करने वाला है। आकाश से दिप्तमान दो रथ सारथी सहित मय शस्त्रों से सज्जित अपने-आप प्रकट हुये।

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ।
रथावुपस्थितौ सद्यः ससुतौ सपरिच्छदौ।।11।। *अ. 50 स्क. 10*

घमासान युद्ध हुआ। साधुओं के कल्याणार्थ ही भगवान का अवतरण हुआ है। हल-मूसल लेकर महाबली बलराम जी जहाँ जरासन्ध की सेना का भयंकर दलन करने लगे। वहीं रथारूढ़ भगवान श्रीकृष्ण ने धनुष से तीरों की बौछार वर्षा की बूँदों की तरह चतुर्दिक करने लगे। उनके पांचजन्य शंख की भयंकर गूँज से शत्रुपक्ष भयभीत हो उठा। शुकदेव जी कहते हैं—परीक्षित्! जरासन्ध के समुद्र समान दुर्गम सेना को थोड़े समय में नष्ट कर डाला। जरासन्ध की सारी सेना मारी गयी। रथ भी उसका टूट गया। महाबली बलराम जी ने उसे पकड़ लिया और मारने हेतु उद्यत् हुये परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी योजना अनुसार उसे छोड़ दिया।

जरासन्ध की सेना के पराजय से मथुरा वासी अभय हुये। भगवान श्रीकृष्ण-बलराम का जोरदार अभिनन्दन किया गया। भगवान श्रीकृष्ण ने युद्ध भूमि से अपार धन और वीरों के आभूषण लाकर महाराज उग्रसेन को भेंट कर दिये।

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेइस-तेइस अक्षौहिणी सेना एकत्र करके बार-बार जरासन्ध-आक्रमण करता और पराजित होने पर छोड़ दिया जाता।

नारद जी भगवान के मन हैं। जब अठारहवाँ संग्राम जरासन्ध से छिड़ने वाला था, उसी

समय नारद जी की प्रेरणा से कालयवन तीन करोड़ मलेच्छों को लेकर मथुरा को घेर लिया। काल यवन की असमय चढ़ाई उधर जरासन्ध की बड़ी सैना सब देखकर भगवान ने अपने मथुरावासियों की रक्षा हेतु समुद्र के भीतर अड़तालिस कोस लम्बा और उतना ही चौड़ा नगर बनवाया। विश्वकर्मा का विज्ञान कौतुकपूर्ण नगर निर्माण कर दिया। इन्द्र ने पारिजात वृक्ष एवं सुधर्मा–सभा प्रदान किया। वरुण जी ने घोड़े, कुबेर ने आठों निधियाँ तथा अन्य लोकपालों ने भिन्न–भिन्न विभूतियाँ भगवान् के पास भेज दी।

भगवान ने अपने समस्त स्वजन सम्बन्धियों को अपने अचिन्त्य योग सामर्थ से द्वारिका नगरी पहुँचा दिया। शेष प्रजा की रक्षा के लिये बलराम जी को मथुरा में रखा और उनसे परामर्श लेकर गले में कमलों की माला पहने, बिना कोई अस्त्र–शस्त्र लिये स्वयं नगर के दरवाजे से एकाकी निकले।

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजन हरिः।
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः।
निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली निरायुधः।।58।। *अ. 51 स्कं. 10*

उन्हें देखकर कालयवन ने स्वयं अस्त्र–शस्त्र त्याग मल्ल युद्ध करने हेतु श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा तब श्रीकृष्ण मुड़कर रणभूमि से भाग चले और उन योगिदुर्लभ प्रभु को पकड़ने के लिये कालयवन उनके पीछे–पीछे दौड़ा। कालयवन पीछे से बार–बार व्यंग करता–

इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम्।
अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम्।।6।। *अ. 51 स्कं. 10*

'अरे यशस्वी यदुवंश में पैदा होकर रण छोड़कर भागना उचित नहीं है'। भगवान श्रीकृष्ण बिना उत्तर दिये एक पर्वत कन्दरा में प्रवेश कर छिप गये। उधर पीछा करता कालयवन गुफा में जब प्रवेश किया तो देखा एक मनुष्य मुँह ढककर सोया पड़ा है। क्रोध । में भरकर भरपूर लात कालयवन ने उस सोये व्यक्ति को मारी। बहुत काल से सोया वह व्यक्ति उठ पड़ा और धीरे–धीरे उसने आँखें खोलीं, उसे सामने कालयवन खड़ा हुआ दिखायी दिया। ठोकर मारकर जगाये जाने से रुष्ट हुये उस महापुरुष के देखते ही कालयवन वहीं क्षणभर में जलकर राख का ढेर हो गया।

"देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसाद्भवत् क्षणात्"

इस विचित्र घटना को सुनकर परीक्षित ने कहा–भगवन्। यह पुरुष कौन था? जिसके दृष्टिपात से कालयवन भस्मीभूत हो गया।

भगवान शुकदेव जी ने कहा–परीक्षित्! यह इक्ष्वाकुवंशी मान्धाता के पुत्र मुचकुन्द थे। असुरों से भयभीत इन्द्र की प्रार्थना पर राजा मुचकुन्द ने उनकी बहुत दिनों तक रक्षा किया। जब देवताओं को सेनापति के रूप में स्वामी कार्तिकेय मिल गये, तब इन्द्रादि देवताओं ने राजा मुचकुन्द को विश्राम करने को कहा तथा वरदान माँगने के लिये कहा। तब थके राजा

मुचकुन्द ने निद्रा का वर माँगा और नींद से भरकर पर्वत गुफा में जाकर सो गये। उस समय देवताओं ने राजा से कहा था—राजन्! यदि कोई मूढ़ आपको सोते से जगा देगा तो आपकी दृष्टि पड़ते ही तत्काल भस्म हो जावेगा।

यवनराज के भस्म हो जाने पर भगवान श्रीकृष्ण ने राजा मुचुकुन्द को अपना दर्शन दिया। बुद्धिमान और धीर पुरुष राजा भगवान की दिव्य ज्योतिर्मय स्वरूप को देख कुछ चकित एवं उनके तेज से हतप्रतिम हो गये और पूछा—आप कौन हैं? गुफा में पधारने का क्या प्रयोजन था? आपकी अंग कांति से गुफा का अँधेरा नष्ट हो गया है। आप ब्रह्मा, विष्णु, शंकर या स्वयं नारायण ही हैं। मैं मुचुकुन्द हूँ। अभी किसी का दाह हो गया है अवश्य ही उसके पापों ने ही उसे जला डाला है।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिय मुचुकुन्द! सनक–सनन्दन आदि त्रिकाल सिद्ध भी मेरे जन्म–कर्म को ठीक–ठीक नहीं जानते। ब्रह्मा जी के प्रार्थना से वर्तमान में मैंने यदुवंश में वसुदेव जी के यहाँ जन्म लिया हूँ। यह भस्म होने वाला कालयवन था। मैं श्रीकृष्ण तुम पर कृपा करने के लिये इस गुफा में आया हूँ। पूर्वकाल में तुमने मेरी बहुत आराधना किया है। मैं भक्तवत्सल हूँ। राजा मुचुकुन्द को सब स्मरण हो आया। वे चरणों में प्रणाम करके बोले—प्रभो! मैं सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से सम्बन्ध रखने वाली सभी कामनाओं को छोड़कर गुणातीत, अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप ही सारे जगत के स्वामी हैं। नाना प्रकार से श्रीकृष्ण भगवान की स्तुति करते हुये मुचुकुन्द ने कहा—परमात्मन्! आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज, तुम्हारा मति और निश्चय बड़ा पवित्र है। वर के प्रलोभन में न पड़कर तुमने अनन्य भक्ति की ही कामना प्रकट की है। जो मेरे भक्त नहीं होते, वे चाहे प्राणायाम आदि द्वारा अपने मन को वश में कर ले परन्तु उनकी वासनायें क्षीण नहीं होती, उनका मन फिर से वासनाओं में पड़ जाता है।

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः।
अक्षीणवासनं राजन दृश्यते पुनरुत्थितम्।।6।। *अ. 51 स्क. 10*

देखो! तुमने क्षत्रियधर्म का आचरण करते समय शिकार आदि में पशुओं का वध किया है। अब एकाग्रचित्त से मेरी उपासना एवं तपस्या द्वारा उन पापों को धो डालो। अगले जन्म में तुम ब्राह्मण बनोगे तथा सर्वभूत हित में रहकर फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानघन परमात्मा को प्राप्त करोगे।

जन्मन्यन्तरे राजन् सर्वभूतसुहृत्तमः।
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम्।।64।। *अ. 51 स्क. 10*

पातंजल योग–शास्त्र के अनुसार
भुवनों का स्वरूप

–डॉ. श्री रुद्रदेव त्रिपाठी एम. ए. पी.एच–डी., डी.लिट्.

योगसूत्र द्वारा भुवनज्ञान का संकेत

महर्षि पतंजलि ने योग–दर्शन में 'भुवन–ज्ञानं सूर्ये संयमात्' (3/26) इस सूत्र की रचना करके अभिव्यक्त किया है कि–''सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों–लोकों का ज्ञान प्राप्त होता है।''

इस सूत्र से पूर्व पतंजलि ने सात्विक–प्रकाश का आलम्बन लेकर सूक्ष्म, व्यवहित एवं विप्रकृष्ट ज्ञानरूप सिद्धियों का संकेत किया है और उससे परमाणु, महतत्त्व आदि सूक्ष्म पदार्थों का, एवं सागर के अन्तराल में निहित रत्नादि, भूमि के गर्भ में छिपे खनिजादि तथा दूर देश सुमेरु पर्वत के दूसरी ओर विद्यमान रसायन, औषधि आदि के ज्ञान की बात सिद्ध होती है।

अतः यह सूत्र भौतिक प्रकाश के विषय में संयम करने का संकेत देकर उससे भुवन–ज्ञान सिद्धि रूप फल की प्राप्ति बतलाती है।

टीकाकारों द्वारा पल्लवित भुवन–ज्ञान

'पातंजल–योगदर्शन' एक सूत्र ग्रन्थ है। अतः इसके सूत्रों की व्याख्या अत्यावश्यक मानी गई। आज तक संस्कृत भाषा में इस पर प्रायः 20 टीकायें प्राप्त हैं। हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी तथा अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं में इस ग्रन्थ के आधार पर पर्याप्त चिन्तन हुआ है और हो रहा है।

व्याख्याकारों में–व्यासदेव, वाचस्पति मिश्र, विज्ञान भिक्षु, नागेशभट्ट, हरिहरानन्द, आरण्यक तथा नारायणतीर्थ आदि ने 'भुवन–ज्ञान' के बारे में विस्तार से प्रतिपादन किया है।

वैसे उपर्युक्त व्याख्याकारों के विचारों में भुवनज्ञान सम्बन्धी विचार प्रायः समान ही हैं। तथापि 'योगसिद्धान्त–चन्द्रिका'–व्याख्या के रचयिता श्री नारायणतीर्थ ने अपने पूर्ववर्ती व्यास, वाचस्पति आदि के भुवन–ज्ञान सम्बन्धी विचारों को पर्याप्त विस्तार के साथ आगे बढ़ाया है। यही कारण है कि प्रस्तुत लेख के शीर्षक में 'योगशास्त्र के अनुसार' ऐसा लिखा गया है। वैसे भुवनों का वर्णन प्रायः पुराणों में ही अधिक उपलब्ध होता है।

योग–सिद्धान्त चन्द्रिका टीका में निर्दिष्ट भुवन–ज्ञान

टीकाकार नारायणतीर्थ ने उपर्युक्त सूत्र के सन्दर्भ में 'भुवन' शब्द का तात्पर्य लोक

सम्पादकीय–

पंचकोशों से आगे है–आत्मतत्त्व

–योगाचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

आत्मतत्त्व के बाहर पाँच कोश हैं उससे आगे आत्म–तत्त्व प्रकाशित है जो सारे कोशों को प्रकाश देता हुआ अन्दर बाहर व्याप्त हो रहा है। ये पाँच कोश क्रमशः एक दूसरे से सूक्ष्म हैं तथा इस व्यष्टि–देह को ऊर्जावान कर रहे हैं। उपनिषदों में पाँच कोशों का वर्णन हुआ है। वे पाँच कोश हैं–अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। इन पाँच कोशों में ही स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर बनते हैं। अन्नमय स्थूलतम है दृष्टिगत है पार्थिव है। यह तमोगुण पर आधारित है। एक प्रकार से माटी का ढेला है। इससे आगे सूक्ष्म शरीर है जो लिंग शरीर भी कहलाता है क्योंकि यह अपने कारण में लीन हो जाता है। ये प्रकृति–विकृति दोनों ही होते है। जो स्वयं किसी की विकृति हैं किन्तु आगे कुछ उत्पन्न करने के कारण प्रकृति भी कहलाते हैं। सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्त्वों का वर्णन हुआ है जो प्रकृति–विकृति का निरूपण करते हैं। श्लोक है–

मूल प्रकृतिरविकृति, महद्यादयः प्रकृति विकृति सप्त।
षोड़कस्तु विकारः न प्रकृति न विकृति–पुरुषः।।

अर्थात् मूल प्रकृति या परा प्रकृति किसी से उत्पन्न नहीं है किन्तु अन्यों को उत्पन्न करती है। महत्तत्त्व, अहंकार तथा तन्मात्रायें प्रकृति विकृति दोनों हैं। महत्तत्त्व से अहंकार उत्पन्न है तथा तन्मात्राओं से पंचमहाभूत उत्पन्न हुये हैं। एकादश इन्द्रियाँ तथा पाँच महाभूत विकार कहे गये हैं अर्थात् यह आगे किसी तत्त्व को उत्पन्न नहीं करते हैं। पुरुष या दृष्टा न प्रकृति है तथा न ही किसी की विकृति है।

कोश को आवरण या पर्दा भी कह सकते हैं। पंचकोशों को ठीक से समझने के लिये इनका स्वरूप समझना आवश्यक है। उपनिषदों में भी प्रकारान्तर से इन कोशों का वर्णन कई जगह हुआ है। कठोपनिषद में आया है–

'इन्द्रियेभ्यो परो ह्यर्थाः' इन्द्रियों से उसके अर्थ अर्थात् विषय–सूक्ष्म है। गीता में भी तीसरे अध्याय में इनका वर्णन आया है–

इन्द्रियाणि पराण्याहु इन्द्रियेभ्यो परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि यो बुद्धेः परतस्तु सः।। *(गीता 3/43)*

अर्थात् इन्द्रियाँ स्थूल शरीर से सूक्ष्म हैं, इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है तथा मन से बुद्धि सूक्ष्म है। बुद्धि से भी जो सूक्ष्म है वही आत्मा है इससे आगे कोई सूक्ष्म वस्तु नहीं है। योग साधना द्वारा इन पाँच कोशों का साक्षात्कार करके आगे आत्मतत्त्व की ओर बढ़ना होता है, यही योगियों का पाठ्यक्रम (Course) है। गुरुदेव अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि योगी पहले इन्द्रियों का साक्षात्कार करे अर्थात् तन्मात्राओं का साक्षात्कार करे। स्वर्गादि तन्मात्र लोक ही हैं। इन्द्रियों के साक्षात्कार के पश्चात् मन का साक्षात्कार करे तथा बुद्धि का साक्षात्कार करे। तब विशुद्ध बुद्धि ऋतम्भरा के द्वारा प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करें। साधारण मनुष्य की बुद्धि या वृत्ति अन्नमय कोश तक ही सीमित रहती है। तमोगुण व अविद्या के कारण शरीर को ही आत्मा समझ लेने के कारण उसमें पशुत्व बुद्धि रहती है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन तक ही उसकी बुद्धि सीमित रहती है इसलिये ऐसे व्यक्ति पशु के समान कहे गये हैं। ऐसे प्राणी को ही मूढ़ावस्था का प्राणी कहा जाता है। सात्विकता का अभाव होने के कारण ऐसे लोग पूर्णतया बहिर्मुखी होते हैं। इन्हें ही 'असुर' कहा गया है क्योंकि ये लोग देहात्मबुद्धि वाले होते हैं। अपने शरीर तक ही सीमित रहते हैं। अपने शरीर का ही पोषण करते हैं। इस कोश से आगे प्राणमय कोश है। प्राण की साधना से ही योगी की योग यात्रा शुरु होती है। उपनिषदों व योग के ग्रन्थों में प्राण साधना पर बहुत बल दिया गया है। प्राण हमारे भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के बीच की कड़ी है। इसी के बलिष्ठ रहने पर लौकिक कार्य भी ठीक से सम्पन्न हो पाते हैं। यदि प्राण को आत्मतत्त्व का 'प्रतिनिधि' कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्राण को ब्रह्म भी कहा गया है। प्राण शोधन के लिये विभिन्न प्रकार के प्राणायाम एवं बन्ध–मुद्राओं का अभ्यास आवश्यक होता है। प्राण यद्यपि जड़ है किन्तु आत्मा की चेतना से यह चेतनवत् कहा जाता है। प्राण सूक्ष्म शरीर का महत्त्वपूर्ण अंग है। प्राण सहित, पँच–तन्मात्रायें, मन, दस इन्द्रियाँ ये प्राणमय तथा मनोमय कोश कहलाता है। योगियों का जो विचारानुगत समाधि है वह इन्हीं के साक्षात्कार से सम्बन्धित है। इसमें योगी स्वर्गादि ऊर्ध्व लोकों में पहुँच जाता है वहाँ के आकर्षण में फँसने का बहुत बड़ा खतरा रहता है ऐसे में गुरुदेव की कृपा से ही योगी प्रलोभन व पतन से बच सकता है। मनोमय कोश मन की अवस्था एवं गतिविधियों का क्षेत्र है। मन स्वप्न में भी नाना प्रकार की सृष्टि का सृजन किया करता है। जाग्रत में भी कल्पना की दुनिया में रमण करता है। मन में ही अविद्या का वास रहता है। मनोमय कोश में ही मन में "मैं" और "मेरा" का सम्बन्ध जोड़ता है। मन का जब ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्ध बना रहता है तभी वस्तुओं का या विषयों का ज्ञान होता रहता है। कभी–कभी मनुष्य शब्दादि को सुन नहीं पाता है क्योंकि मन का शब्द से सम्बन्ध नहीं रहता है तो सुनते हुये भी नहीं सुनता है क्योंकि

मन कहीं अन्यत्र ही जुड़ा हुआ होता है।

मन में वासनायें अनादि काल से संचित रहती हैं। ज्ञानेन्द्रियों का सम्पर्क पाते ही मन उस ओर खिंच जाता है इस प्रकार से विषय–वासना की अग्नि प्रज्जवलित हो जाती है। इसलिये शास्त्रों में कहा गया है कि कामनाओं को भोगते रहने से वे कभी शान्त नहीं होती।

''न जातु कामा: कामनाम् उपभोगेन शाम्यति'' कामनायें–भोगने से कभी शान्त नहीं होती हैं बल्कि आग में घी डालने से जैसे अग्नि बढ़ती है ऐसे ही कामना भी बढ़ती जाती है। अनादि वासना ही कामनाओं का कारण है। यह वासना मन में रहती है। जगत् गुरु शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि में कहते हैं–

न ह्यस्त्यिविद्या मनसोऽतिरिक्ता।
मनो ह्यविद्या भवबन्ध हेतुः
तस्मिन् विनष्टे सकलं विनष्टम्
विजृम्भितेऽस्मिन् सकलं विजृम्भते।

–विवेक चूड़ामणि (169)

अर्थात् मन के अतिरिक्त कोई अविद्या नहीं है। मन ही अविद्या के द्वारा भवबन्धन का हेतु बनता है। मन के नष्ट हो जाने पर सब नष्ट हो जाता है। मन की कल्पना से ही जगत का विस्तार होता है। कहा भी गया है–

मन एव मनुष्याणाम् कारणं बन्धमोक्षयोः

मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण मन ही है। रजोगुण व तमोगुण से मलिन मन बन्धन का कारण होता है और शुद्ध सतोगुणी मन मुक्ति का कारण बनता है। मन के विषय में आगे भी आचार्य प्रवर कहते हैं–

मनोनाम महाव्याघ्रो विषयारण्य भूमिषु,
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो हि मुमुक्षुवः।

–विवेक चूड़ामणि (176)

अर्थात् विषय वासना रूपी जंगल में महाव्याघ्र निगल जायेगा इसलिये मुमुक्षु साधु को इस पथ पर नहीं जाना चाहिये। अर्थात् विषय–वासना के जंगल से साधक को बचना चाहिये। विज्ञानमय कोश में भी साधक मैं, मेरा का बोध रखता है। आत्मा की संन्निधि से बुद्धि चेतन हो जाती है। रजोगुण के प्रभाव से यहाँ भी साधक अभी आत्मतत्त्व से दूर होता है और अपने को कर्ता मानने के कारण कर्म–बंधन में फंसता है। गीता में भगवान् कहते हैं–

अहंकार विमूढात्मा कर्ताऽहमितिमन्यते'' *(गीता 3/27)*

अहंकार के कारण अज्ञानी व्यक्ति अपने को कर्म का कर्ता मानकर कर्मफल से बँध जाता है। कार्यों का स्वयं कर्ता मानना ही विज्ञानमय कोश का बन्धन है। आनन्द की अनुभूति होना भी एक वृत्ति ही है। इस स्थिति में साधक अपने इष्ट को ही सर्वत्र देखा करता है। साधक आत्म विभोर रहता है जो इस आनन्द की वृत्ति से युक्त रहता है। योग साधना में आनन्दानुगत समाधि से आगे अस्मितानुगत समाधि है जिसमें योगी अपने शुद्ध चित्त का साक्षात्कार करता है। अपने को सब प्राणियों के अन्दर देखता है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि,
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र सर्व दर्शनः।

(गीता 6/29)

अर्थात् अपने को सर्व प्राणियों के अन्दर देखता है और सर्व प्राणियों के अन्दर अपने को देखता है ऐसा सर्वत्र आत्मतत्त्व का दर्शन करने वाला योगी योग–युक्तात्मा कहलाता है। इस वृत्ति के परिपक्व होने पर योगी को ऋतम्भरा प्रज्ञा या विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है। योगी जड़ और चेतन को पृथक्–पृथक् समझने वाला होता है। ऐसे सत्त्व प्रधान बुद्धि में ही दिव्य मन्त्रों का चित्त में प्रकाशन होता है। वे मन्त्रों का दृष्टा बन जाता है।

इस प्रकार से योगी ध्यान करता–करता इन कोशों को लांघकर विवेक ख्याति तक पहुँच जाता है जहाँ पर सतोगुण पूर्णरूप से प्रकाशित रहता है। अज्ञान का नाश व ज्ञान का उदय इसी स्थिति में होता है। योगी ध्यान के द्वारा दिव्य दृष्टि को प्राप्त कर लेता है। जिससे वह सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व को अपने ध्यान व संकल्प से जान लिया करता है। सर्वज्ञ और सर्व समर्थ होता है। बुद्धि तक के समस्त सूक्ष्म प्रकृति को अपने वश में कर लेता है तभी वह बन्धन मुक्त होकर कैवल्य की स्थिति को प्राप्त करता है। वहाँ तक पहुँचने के लिये पंचकोशों को ध्यान के माध्यम से लांघकर आत्म–स्थिति को योगी प्राप्त कर लेता है और बन्धन–मुक्त हो जाता है। जड़–चेतन का ज्ञान हो जाता है किन्तु यह दिव्य–चक्षु से ही संभव है।

माना है। शास्त्रों में ब्रह्माण्ड शब्द के साथ महा शब्द जोड़कर 'महाब्रह्माण्ड' को अनेक ब्रह्माण्डों का आधार माना है। अतः इस महाब्रह्माण्ड में अनेक संक्षिप्त ब्रह्माण्ड हैं और एक ब्रह्माण्ड चौदह भुवनों की समष्टि से निर्मित है।

इस दृष्टि से भूलोक को केन्द्र मानकर 'भूरादिसत्यान्तानि उपरितनानि' कहकर उसके ऊपर छह लोक माने गये हैं।

इनके नाम हैं–(1) भुवर्लोक, (2) स्वर्लोक, (3) महर्लोक, (4) जनलोक, (5) तपोलोक एवं (6) सत्यलोक।

ये ऊपर स्थित होने से ऊर्ध्वलोक भी कहे जाते हैं और एक दूसरे से नीचे होने से ये सत्यलोक के नीचे वाले लोक 'अधोलोक' भी माने जा सकते हैं।

'अतलादिपातालान्तान्यधस्तनानि' के अनुसार भूलोक से नीचे सात लोक हैं जिनके नाम हैं–(1) अतललोक, (2) वितललोक, (3) सुतललोक, (4) तलातललोक, (5) महातललोक, (6) रसातललोक तथा (7) पाताललोक। 1 ये सातों अधोलोक हैं।

इनमें भी पाताललोक से ऊर्ध्ववर्ती लोक ऊर्ध्वलोक कहे जा सकते हैं।

इन पाताललोकों के ऊपर जलावरण है। इनके ऊपर तथा भूमि के नीचे तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, रौरव, कुम्भीपाक, मूलासिपत्र, वनसूकर, मुखान्धकूप, कृमिभोजन, मदशत, प्रभूमिवज, कण्टक, शाल्मलि, वैतरणी, प्रमोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्षण, सारमेयादन मदीचिरय, पानक्षार, कर्दम, रक्षोगण, भोजनशूल, प्रोतवन्द, शूकावट, निरोधन, पर्यावर्तन, सूचीमुख आदि। इन सबसे मिलकर एक ब्रह्माण्डावयव का स्वरूप बनता है।

इसी प्रकार के असंख्य ब्रह्माण्डावयव महाब्रह्माण्ड में समाविष्ट है। 2 उक्त ब्रह्माण्ड अवयव का महाब्रह्माण्ड में उतना ही स्थान है जितना कि आकाश में जुगनूँ का।

ब्रह्माण्डमध्ये संक्षिप्तं ब्रह्माण्डं च व प्रधानस्यावयवी यथाकाशे खद्योतः।

(यो. सि. चं. पृ. 128)

भूलोक तथा उसके द्वीपादि

उपर्युक्त ब्रह्माण्डावयव में स्थित लोकों में भूलोक की अपनी विशिष्टता है। इसमें सात द्वीप हैं। मत्स्य एवं वायु आदि पुराणों में 'द्विरापत्वात् स्मृतो द्वीपः' (म. 123/35) (वायु. 49/132) कहकर स्पष्ट किया गया है कि–'जिसके दोनों ओर जल हो वह द्वीप होता है।' किन्तु इन्हीं पुराणों में अन्यत्र 'द्वीपस्य मण्डली भावात्' कहकर द्वीप को मण्डलाकार भी बताया है।

सात द्वीप क्रमशः–'जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्कर' नाम वाले हैं। प्रत्येक द्वीप एक–एक समुद्र से आवेष्टित है तथा वे दोनों वलयाकार हैं।

वलयाकार वाले इन द्वीपों में 'जम्बू–द्वीप' की स्थापना मध्य में है।

स्वयं एक लक्ष योजन विस्तृत और दो लक्ष योजन विस्तृत लवण–समुद्र से वेष्टित इस

जम्बूद्वीप के मध्य में मेरु-सुमेरु पर्वत है।

सुमेरु पर्वत की ऊँचाई 84 हजार योजन है। यह शिरोभाग में 32 हजार योजन तथा मूल से 16 हजार योजन विस्तार वाला है।

सुमेरु के चार शिखर हैं—पूर्व में रजतमय, दक्षिण में वैडूर्यमणिमय, पश्चिम में स्फटिक का एवं और उत्तर में हेममणिमय है।

सुमेरु की उत्तर दिशा में तीन पर्वत हैं—नील, श्वेत तथा शृंगवान्। इन तीनों का विस्तार दो-दो सहस्त्र योजन है। वैदुर्यमणि की कान्ति वाले नील पर्वत पर ब्रह्मर्षि, रजताभामय श्वेत पर्वत पर देवासुर तथा हेम-रत्नादिमय शृंगवान् पर्वत पर सपत्नीक देवगण रहते हैं।

इन तीनों पर्वतों के मध्य एक-एक वर्ष है जो क्रमशः रमणक, हिरण्यक तथा उत्तरकुरु नाम से विख्यात हैं। प्रत्येक वर्ष नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाला है।

उत्तरकुरु में ऐसे दिव्य वृक्ष हैं जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करते हैं। हेम तथा सुवर्ण कर्ण की भूमि वाले इस वर्ष में तेरह हजार वर्ष की आयु वाले देवगण निवास करते हैं।

हिरण्य वर्ष के देवताओं की आयु ग्यारह हजार वर्ष की है। माया और मति इनके आधीन रहते हैं। ये अपनी स्त्रियों सहित विहार करते हैं।

रमणक वर्ष में मनुष्यों का आवास है। पुण्य कर्मों के कारण यहाँ के निवासी दस हजार वर्ष पर्यन्त प्राण धारण करते हुए सुख से रहते है। यह मनुष्यों की भोग-भूमि है।

सुमेरु के दक्षिण भाग में 'निषध, हेमकूट तथा हिमशैल' नामक तीन पर्वत हैं। यहाँ सर्प, नाग, गन्धर्व आदि दिव्य योनियाँ रहती हैं।

हेमकूट पर्वत पर गुह्य जगत के लोग रहते हैं। ये पर्वत भी दो-दो सहस्त्रयोजन विस्तृत हैं।

इन पर्वतों के मध्य भाग में एक-एक वर्ष है जिनके नाम क्रमशः हरिवर्ष, किंपुरुष और भारतवर्ष है। प्रत्येक वर्ष का विस्तार नौ-नौ हजार योजन है।

हरिवर्ष में ब्रह्माण्ड के अनुयायी दैत्य, दानव, नृसिंहादि निवास करते हैं।

किंपुरुष वर्ष में किंपुरुष, गन्धर्व आदि के साथ हनुमान प्रभृति रहते हैं। ये अष्टादश पुराण, इतिहास आदि के द्वारा श्रीराम का गुणगान करते हैं। भारतवर्ष में निवास करने वाले मनुष्य अपने शुभाशुभ कर्मानुसार स्वर्ग नरक अथवा मोक्ष के अधिकारी होते हैं। अन्य खण्डों की भांति यह केवल भोग भूमि नहीं हैं, अपितु कर्म भूमि भी है।

यहाँ बहने वाली गंगा आदि नदियों में स्नान करके पुण्यात्मायें पापकालुष्य को दूर करती हुई अपने को कृतकृत्य मानती हैं।

ये आत्मायें विन्ध्यादि पर्वतों की चोटियों पर चढ़कर भगवद्भक्ति में निमग्न रहती हैं। दूसरी ओर नारकीय दुरात्मायें काम-क्रोधादि से अपनी आत्मा को मलिन करती हुई व्यभिचार प्रिय होती हैं जो कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करती हैं।

सुमेरु पर्वत की पूर्व दिशा में दो हजार योजन विस्तृत माल्लवान् पर्वत है। इससे आगे समुद्र पर्यन्त विस्तृत भद्राश्व वर्ष है, जो इकतीस हजार योजन विस्तृत है, यहाँ शक्ति और तेजः सम्पन्न दस सहस्त्र–जीवी मनुष्य निवास करते हैं। सिद्ध–चारण इनकी शुश्रूषा करते हैं और ये लोग वन विहार प्रिय हैं।

सुमेरु के पश्चिम में दो सहस्त्र योजन विस्तृत गन्धमादन पर्वत है। इस पर अनेक सेवकों के सहित कुबेर का निवास है जो अनेक सुन्दर ललनाओं के साथ आमोद–प्रमोद मनाते रहते हैं।

यहाँ इकतीस हजार योजन विस्तृत हेतुमाल देश है। यह भय एवं शोक सहित दश सहस्त्रजीवी मनुष्यों की आवास भूमि है।

सुमेरु के चारों ओर अठारह हजार योजन विस्तृत इलावृत वर्ष।

इस प्रकार जम्बूद्वीप में कुल नौ वर्ष एवं नौ पर्वत हैं।

सम्पूर्ण जम्बूद्वीप पूर्व से पश्चिम की ओर अथवा उत्तर से दक्षिण की ओर एक लक्ष योजन विस्तृत है।

अन्य द्वीप और उनकी विशेषतायें

शास्त्रों में 'सप्तद्वीप वसुन्धरा' कहा गया है। तदनुसार प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप है तथा शेष अन्य प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौंच, शाक एवं पुष्करद्वीप बतलाये हैं। इनका परिचय योग शास्त्रानुमोदित इस प्रकार है–

1–प्लक्षद्वीप जम्बूद्वीप से दुगुने परिणाम (दो लाख योजन) वाला यह द्वीप है। यह चार लक्ष योजन वाले इक्षुरस–समुद्र से आवेष्ठित है।

इसमें शिव, वयस्, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय नामक सात वर्षों से युक्त है।

तथा इन वर्षों में मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव तथा मेघमाल नाम सात पर्वत हैं।

यहाँ अरुणा, तृष्णा, अंगिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा तथा सत्यम्भरा नामक सात नदियाँ बहती हैं। इन नदियों का जल स्पर्शमात्र से मनुष्यों के पाप को दूर करता है। यहाँ के निवासी सूर्योपासक हैं और वे एक सहस्त्र वर्ष जीवी होकर प्रजा आदि से परिपूर्ण होते हैं।

2–शाल्मल द्वीप–यह द्वीप प्लक्ष द्वी. से द्विगुणित विस्तारशाली है तथा अपने से दुगुने आयाम वाले सुरा समुद्र से आवेष्ठित है।

इसमें भी सात वर्ष, सात पर्वत और सात नदियाँ हैं।

जिनके नाम इस प्रकार हैं–सात वर्ष–सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देव, पारिभद्र, आप्यायन तथा अविज्ञात।

सात पर्वतों के नाम हैं–स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष तथा सहस्त्र–स्तुति।

अनुमति, सिनीवाली, सरस्वति, कुरु, रजनी, नन्दा तथा राका नामक सात नदियाँ प्रमुख हैं। यहाँ के निवासी सोमोपासक हैं।

3–कुशद्वीप–शाल्मल द्वीप से दुगुने आयाम वाला यह द्वीप आठ लाख योजन विस्तृत है और सोलह लाख योजन विस्तार वाले घृत–समुद्र से आवेष्टित है।

पूर्ववत् यहाँ 'वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, सत्यकुल, विविक्त एवं नामदेव' ऐसे सात वर्ष हैं।

चक्र, चतुशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोम और द्रविण नामक सात पर्वतों की यहाँ स्थिति है।

यहाँ की नदियों के नाम घृतकुल्या, रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, देवगर्भा, घृत–च्युता और मन्त्रमाला हैं और यहाँ के निवासी अग्नि की उपासना करते हैं।

4–क्रौंचद्वीप–कुशद्वीप से द्विगुण आयाम वाला यह द्वीप अपने से द्विगुणित क्षीरोदधि से परिवेष्टित है।

यहाँ के सात वर्ष–आभ, मधुरुह, मेघपृष्ठ सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण तथा वनस्पति नाम से विख्यात हैं और शुक्र, वर्धमान, भोजन, उपवर्हण, नन्द, नन्दन एवं सर्वतोभद्र नाम से प्रसिद्ध सात पर्वतों की यहाँ स्थिति है। अभया, अमृतौघा, अर्वका, तीर्थवती, रूपवती, पवित्रवती और शुक्ला नामक नदियाँ इस द्वीप में बहती हैं तथा यहाँ के निवासी वरुण की उपासना करते हैं।

5–शाकद्वीप दधिसमुद्र से आवेष्ठित यह द्वीप क्रौंचद्वीप से द्विगुणित आयाम वाला है। तथा इसके सात वर्षों के नाम हैं–पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेक, बहु–रूप तथा विश्वधारा।

ईशान, ऊरुशृंग, बलभद्र, शतकेशर, सहस्त्र स्रोत, देवपाल एवं महानस नामक सात पर्वतों से यह विभूषित है।

अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता पचनदी, सहस्त्र–स्तुति तथा निजधृति–ये सात नदियाँ यहाँ प्रवाहित होती हैं और यहाँ के प्राणी समाधि लगाकर प्राण की उपासना करते हैं।

6–पुष्कर द्वीप–स्वादूदक समुद्र से वलयाकारित यह द्वीप शाकद्वीप से दुगुना बड़ा है। यहाँ मानसोत्तर नाम वाला केवल एक पर्वत है, जो कि एक अयुत योजन ऊँचा है। इसके चारों ओर इन्द्र आदि लोकपालों के चार पुर हैं।

स्वादूदक समुद्र के आगे की भूमि एक ओर से एक करोड़ सत्तावन लाख पचास हजार * आयाम वाली है।

यह भूमि लोकभूमि कहलाती है। इससे आगे लोकालोक पर्वत है और उससे आगे कॉचनमयी अलौकिक देवताओं की क्रीड़ाभूमि है।

अन्य लोक और उनके स्वरूप

भू–लोक का परिचय हमने ऊपर दिखलाया है, इसके अतिरिक्त अन्य छह लोक और है जिनके नाम स्वरूपादि इस प्रकार हैं–

1–**भुवर्लोक**–भू–लोक के ऊपर यह लोक स्थिति है। इसका दूसरा नाम अन्तरिक्ष है। यहाँ ग्रह, नक्षत्र एवं तारागण ज्योतिश्चक्र में निबद्ध होकर संचरण करते है।

2–**स्वर्लोक**–अन्तरिक्ष के ऊपर स्थित इस लोक को माहेन्द्रलोक भी कहते हैं।

यहाँ त्रिदश, अग्निष्वात्त, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित, वशवर्ती तथा परिनिर्मित, वशवर्ती ऐसी छः देव जातियाँ हैं।

ये समस्त देव सिद्ध संकल्प तथा अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से सम्पन्न होते हैं।

ये शरीर धारण मे स्वतन्त्र हैं और एक कल्प पर्यन्त जीवित रहते हैं।

3–**महर्लोक**–'प्राजापत्य–लोक' इसका दूसरा नाम है। यह स्वर्लोक के ऊपर है। यह कुमुद, ऋभु, प्रतर्दन, अजनाभ और अमिताभ संज्ञक पांच देव–जातियों की निवास–भूमि है। ये पञ्चमहाभूतों को वश में करने वाले, ध्यान प्रिय तथा कल्प–सहस्त्र आयु वाले होते हैं।

4–**जनलोक**–इसकी स्थिति महर्लोक के ऊपर है। यहाँ चार प्रकार के देव–समूह है–1. ब्रह्मपुरोहित, 2. ब्रह्मकायिक, 3. ब्रह्ममहाकायिक और 4. अमर। ये भूतेन्द्रिय–वशी हैं।

ब्रह्मपुरोहित दो हजार, ब्रह्मकायिक चार हजार, ब्रह्म महाकायिक आठ हजार तथा अमर संज्ञक देव सोलह हजार कल्प की आयु वाले होते हैं।

5–**तपोलोक**–जन लोक से ऊपर तपोलोक है, यहाँ अहंकार को वश में रखने वाले 1. अभास्वर, 2. महाभास्वर तथा 3. सत्य महाभास्वर ऐसे तीन प्रकार के देव रहते हैं।

ये जन–लोक के देवताओं की अपेक्षा द्विगुण–द्विगुण आयुष–वाले है और ये सभी ऊर्ध्वरेतस् होते हैं।

6–**सत्यलोक**–सब लोकों से ऊपर सत्य लोक है।

यह योगियों की निवास भूमि है। यहाँ के योगी चार प्रकार के हैं–1. अच्युत, 2. शुद्ध निवास, 3. सत्याभ तथा 4. संज्ञासंज्ञी। ये चारों प्रकार के योगी क्रमशः सवितर्क सविचार, सानन्द और सास्मित समाधि सिद्ध है।

प्रणवोपासक इन योगियों की आयु सर्ग–पर्यन्त होती है।

भूलोक के अधोवर्ती लोक

1–अतल–लोक–भूलोक के नीचे यह लोक स्थित है। यहाँ मय–पुत्रादि असुर निवास

करते हैं।

2–वितल–लोक–यह पूर्ववर्ती लोक के नीचे है।

यहाँ भगवान शिव पार्वती के साथ विहार करते हैं क्योंकि शिव हाटकी नदी के अधिपति माने गये हैं। यह नदी यहीं प्रवाहित होती है।

यहाँ भूत, प्रेत, पिशाच, अवस्मार, ब्रह्मराक्षस, कूष्माल्ड, विनायक आदि निवास करते हैं।

3–सुतल–लोक यह वितल–लोक से नीचे है। यहाँ भगवान् कृपा से अनुगृहीत, आत्म–समर्पण के अभिलाषी, प्रभु के प्रवर भक्त अपनी भक्त–मण्डली के साथ निवास करते हैं।

4–तलातल–लोक–उपर्युक्त लोक से नीचे इस लोक की स्थिति है।

यहाँ मायावी मय और उनके अनुचर रहते हैं।

5–महातल–लोक–यह तलातल के नीचे विद्यमान है।

तथा यहाँ तक्षकादि सर्पगणों की स्थिति है।

6–रसातल–लोक–इस लोक की स्थिति महातल के नीचे है।

यहाँ दैत्य, दानव, निवात, कवच प्रभृति रहते हैं।

7–पाताल–लोक–पूर्वाक्त सभी लोकों के नीचे यह लोक है।

यहाँ वासुकी आदि सर्पाधिराज सपरिवार निवास करते हैं।

उपसंहार

यद्यपि यह कहने वाले नास्तिक प्रायः बहुत से लोग हैं, जो ऐसे भुवन–विज्ञान को निराधार अथवा कल्पना–प्रसूत साहित्य की कोटि का मानते हैं, किन्तु जैसे–जैसे विज्ञान अपने पंख फैला रहा है वैसे ही इस विज्ञान की सत्यता सम्मुख आ रही है। हजारों वर्षों से चली आ रही भारतीय संस्कृति में इस लोक–विज्ञान का महान आदर है।

प्रत्येक आस्तिक भारतीय इन लोकों का सादर–स्मरण अपने दैनिक और नैमित्तिक धार्मिक कृत्यों में करता आया है।

भारतवर्ष की महिमा का स्मरण इन लोकों के ज्ञान के बिना अपूर्ण ही कहा जाएगा।

जो लोक इस आर्ष विज्ञान को अनुपादेय मानते हैं, वे वस्तुतः दया के पात्र हैं।

क्योंकि उनका जीवन चार्वाक के सिद्धांतों के अनुसार केवल 'होटल में खाओ और हॉस्पीटल में मर जाओ' का ही अनुसरण कर रहा है।

अस्तु! हमारा तो यही निवेदन है कि प्रत्येक विवेकी मानव को ऐसे तत्त्वों का अनुशीलन करते हुए सत्य की साधना में अग्रसर होना चाहिये।

भजन

रचनाकार—श्री पं. प्राणनाथ शर्मा, चण्डीगढ़

चरणों में तेरे जीना-मरना,
अब दूर यहाँ से जाना क्या?
एक बार जहाँ सिर झुक जाये
फिर सिर को वहाँ से उठाना क्या?
चरणों में तेरे बालक सारे
प्रभु शीश झुकाये बैठे हैं!
दो हुक्म हमें प्यारे सतगुरु
हम पेश करें नजराना क्या? (1)

मन भी तेरा हम भी तेरे
हर स्वांस अमानत तेरी है!
जब नजर मेहर की हो ही गई
फिर दिल का यूँ घबराना क्या? (2)

मन को भरमाने की खातिर
हमें बहुत बुलावे आते रहे।
प्रभु प्यारे का सिर पर हाथ रहे
फिर और के दर पर जाना क्या? (3)

किसी और गरज की खातिर तो,
हाथ ये अब उठते ही नहीं।
जब दिल में कोई ख्वाहिश ही नहीं
तो दामन का फैलाना क्या? (4)

जो प्यार में तेरे मिल जाये
वो कांटे फूल से बेहतर हैं।
तेरा प्यार जो मेरे साथ रहे
तो गुलशन और वीराना क्या? (5)

।। गीता ज्ञान हृदय में धारो ।।

गीता ही ज्ञान का सागर है, गीता ही मुक्ति का मूल।
बिना ज्ञान नर मरि रहे, मूल युक्ति को भूले।।
भगवान कृष्ण की बाणी से, यह गीता सागर प्रगट हुआ।
कलिमल–अज्ञान–तिमिर नाशक, जन पातक नाशक प्रगट हुआ।।
यह जीव जगत में आया है, प्रारब्ध भोग भरने के लिये।
कुछ भाग्य भोग भरने के लिए, कुछ कर्म नए करने के लिए।।
इस जग में आकर इस तन से, शुभ और अशुभ कर्म करेगा जैसे।
फिर फल पाने को निज कर्मों का, अगला जनम मिलेगा वैसे।।
गीता ज्ञान हृदय धारण कर, यदि कर्म योग को अपनाएगा।
भक्ति–ज्ञान–योग अपनाकर, भव सागर में तर जाएगा।।
यदि गीता का उपदेश न माना, लख–चौरासी में भटकेगा।
जनम–जनम के दुख सागर में, तेरा बेड़ा जा अटकेगा।।
गीता ज्ञान का साधक बनकर, जग के सारे काम करेगा।
कृष्ण कन्हैया अपना लेंगे, ''कोमल'' फिर ना देह धरेगा।।
प्रभु के तन से प्रभु के जग में, 'प्रभु' हेतु ही काम करेगा।
अच्छे–बुरे सभी कर्मों को, प्रभु को अर्पण नित्य करेगा।।
कर्मों का फल साथ न होगा, फिर क्यों पुनर्जन्म पाएगा।
'प्रभु' का अंश 'प्रभु' को पाकर, जनम–मरण से छुट जाएगा।।
कोमल स्वामी युक्ति बतावें, गीता ज्ञान हृदय में धारो।
भक्ति–कर्म–योग अपनाकर, अज्ञान–मोह–ममता को मारो।।

।। शुभम् ।।

रचनाकार एवं प्रस्तुतकर्ता

धर्माचार्य दण्डीस्वामी कोमल देव आश्रम
परमाध्यक्ष–अद्वैत मुमुक्ष आश्रम सनातन देव मन्दिर
तैयवपुर, सुजातगंज (कोठी)
पोस्ट–बिलराम, जिला–कासगंज,
उत्तर प्रदेश।

दिनांक–11.08.2019

यद्यपि रथ को घोड़े ही खींचते हैं, परन्तु उन घोड़ों को सही मार्ग पर चलाना लगाम हाथ में थामे रहना बुद्धिमान सारथी का काम है। इन्द्रियरूपी बलवान घोड़े स्वाभाविक ही विषयों से भरे संसाररूपी चरागाह की ओर दौड़ना चाहते हैं, परन्तु यदि बुद्धिरूपी सारथी मनरूपी लगाम को खींचकर उन्हें वश में कर लेता है तो फिर वे कहीं नहीं जा सकते। इस प्रकार मन के वश में हो जाने से इन्द्रियाँ स्वतः ही वश में हो जाती हैं।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः, अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा, काष्ठा सा परा गतिः।। *(1/3/10–11)*

इन्द्रियों से शब्दादि विषय बलवान हैं, वे साधक की इन्द्रियों को बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। अतः साधक को चाहिए कि वह इन्द्रियों को विषयों से दूर रखे, विषयों से बलवान मन है। यदि मन विषयों के चिन्तन से हट जाये तो इन्द्रियाँ और विषय साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते। अतः बुद्धि की सहायता से अर्थात् बुद्धि द्वारा विचार करके मन को राग–द्वेष से रहित बनाकर उसे अपने वश में कर लेना चाहिए। बुद्धि से भी इन सबका स्वामी आत्मा बलवान है।

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सब पर आत्मा का अधिकार है, किन्तु इस आत्मा से भी बलवान एक और तत्त्व है–ईश्वर की अव्यक्त माया–शक्ति। उसे ही कोई प्रकृति और कोई माया कहते हैं, उसे हटाना जीव के वश की बात नहीं है। अतः इससे भी बलवान जो सबके स्वामी, सबकी परम अवधि और सबके सर्वाधार परम पुरुष परमेश्वर हैं, उन्हीं की शरण लेनी चाहिए।

ईश्वर के शरणागत होकर उसकी प्राप्ति के लिए किस प्रकार साधना करनी चाहिए? इस जिज्ञासा पर प्रस्तुत मन्त्र में धारणा–ध्यान की विधि बतलाई जा रही है–

यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।। *(1/3/13)*

बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह पहले तो अपनी वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन में विलीन कर दे अर्थात् मन में विषयों की स्फुरणा न रहे। जब यह साधन भलीभाँति होने लगे तो मन को ज्ञान–स्वरूप बुद्धि में विलीन कर दे। अर्थात् एकमात्र विज्ञान–स्वरूप निश्चयात्मिका बुद्धि की वृत्ति के सिवा मन की भिन्न सत्ता न रहे। उसके बाद ज्ञान–स्वरूप बुद्धि को भी जीवात्मा के शुद्ध स्वरूप में विलीन कर दे। अर्थात् ऐसी स्थिति हो जाये जहाँ एकमात्र आत्मतत्त्व के सिवाय अपने से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता ही अनुभव में न आये। इसके पश्चात् अपने आपको भी शांत–स्वरूप परम पुरुष परमात्मा में विलीन कर दे।

यदा पंचावतिष्ठन्ते, ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति, तामाहुः परमां गतिम्।।
तां योगमिति मन्यन्ते, स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति, योगो हि प्रभवाप्ययौ।। *(2/3/10-11)*

उपरोक्त प्रकार से योग-धारणा के द्वारा जब मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भलीभाँति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती, उस स्थिति को योगी-योग की सर्वोत्तम स्थिति बतलाते हैं।

इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम ही योग अर्थात् समाधि है-ऐसा अनुभवी आचार्यों का मत है, क्योंकि उस समय साधक विषय-दर्शन रूप प्रमाद से रहित हो जाता है। यह योग उदय और अस्त होने वाला है। अतः कल्याणकामी व्यक्ति को निरन्तर योगयुक्त रहने का दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिए।

प्रथम अध्याय के अन्तिम मन्त्र में नचिकेता ने आचार्य यम से यह भी प्रश्न किया था कि मरने के बाद जीवात्मा की क्या गति होती है? इसी के उत्तर में यमराज कहते हैं-

योनिमन्ये प्रपद्यन्त, शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसयन्ति, यथाकर्म यथाश्रुतम्।। *(2/2/7)*

यमराज कहते हैं कि शरीर त्यागने के बाद जीवात्मा अपने कर्मों और वासनाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की गति को प्राप्त करता है। जिसके जैसे कर्म होते हैं और शास्त्रादि को पढ़-सुनकर तथा अच्छी-बुरी संगति से जिसके जैसे भाव अन्तकाल में बने होते हैं, उसी के अनुसार मरने के बाद कितने ही जीवात्मा तो दूसरा शरीर धारण करने के लिए नाना प्रकार की जंगम योनियों को प्राप्त हो जाते हैं। उनमें जिनके पुण्य-पाप समान होते हैं, वे मनुष्य-योनि में जन्म लेते हैं और जिनके पाप-कर्म अधिक होते हैं, वे पशु पक्षी का शरीर धारण करते हैं और जिनके घोर पाप-कर्म होते हैं, वे वृक्ष, लता, पर्वत आदि जड़ शरीर में उत्पन्न होते हैं।

बालक नचिकेता को जीवात्मा की अंतिम गति बतलाकर यमराज अब परमात्मा का स्वरूप और भी अधिक स्पष्टीकरण के साथ समझाते हैं-

य एषु सुप्तेषु जागर्ति कामंकाम पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म, तदेवामृतमुच्यते।।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु, नात्येति कश्चन एतद् वै तत्।। *(2/2/8)*

जीवात्माओं के कर्मानुसार उनके लिए नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला जो यह परम पुरुष परमेश्वर प्रलय-काल में सब जीवों के सो जाने पर भी अपनी महिमा में नित्य जागता रहता है, वही परम विशुद्ध तत्त्व है, वही परब्रह्म है, उसी को अमृतस्वरूप परमानन्द कहा जाता है। ये समस्त लोक उसी में आश्रय पाये हुए हैं। उसके नियमों का कोई

भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। हे नचिकेता! यही है वह परमात्मा जिसके विषय में तुमने पूछा था।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न, लिप्यते चाक्षुर्षैबाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा, न लिप्यत लोकदुःखेन बाह्यः।। *(2/2/11)*

जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता है। उस प्रकाश की सहायता से ही लोग नाना प्रकार के कर्म करते हैं, परन्तु सूर्य उनके नेत्रों द्वारा किये जाने वाले बाह्य स्वरूप दोषों से लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार सब प्राणियों के अन्तर्यामी एक परब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हीं की शक्ति से मनुष्य इन्द्रियों द्वारा शुभाशुभ कर्म करते हैं और उनका सुख–दुःख रूप फल भोगते हैं, परन्तु वे परमेश्वर उनके दुःखों से लिप्त नहीं होते। क्योंकि वह परमात्मा सबमें रहता हुआ भी सबसे पृथक् है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा, रूपं रूप प्रतिरूपो बहिश्च।। *(2/2/9)*

जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में निराकार रूप से व्याप्त एक ही अग्नि प्रज्वलित होने पर नाना रूपों में उनके समान आकार वाला बन जाता है। वैसे ही समस्त प्राणियों का अंतरात्मा परमेश्वर एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के समान रूप वाला हो रहा है और बाहर भी वही है। उन परमेश्वर की महत्ता इतनी ही नहीं इससे कहीं अधिक है।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।। *(2/2/12)*

जो परमात्मा सबके अन्तर्यामी हैं, जो अद्वितीय एवं सबको वश में रखने वाले हैं, वही सर्व शक्तिमान परमेश्वर अपने एक ही रूप को अपनी लीला से बहुत प्रकार का बना लेते है। जो ज्ञानी पुरुष उन्हें निरन्तर अपने अन्दर स्थित देखते रहते हैं, उन्हीं को ही सदा रहने वाला शाश्वत् सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।

यमराज के मुख से परमेश्वर की विलक्षण महिमा को सुनकर नचिकेता मन ही मन विचार करने लगा कि उस परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को मैं किस प्रकार से जानूँ? क्या वे परमात्मा प्रकाशित होते हैं या अनुभव में आते हैं? बालक के मनोभावों को जानकर यमराज पुनः कहते हैं–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमाः विद्युतो भांति कुतोऽयमग्निः।।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। *(2/2/15)*

हे नचिकेता! उस प्रकाश पुञ्ज परमात्मा के समीप न सूर्य प्रकाशित होता है न चन्द्रमा और तारागण प्रकाशित होते हैं और न ये बिजलियाँ ही प्रकाशित होती हैं। फिर यह लौकिक अग्नि तो प्रकाशित ही कैसे हो सकती है? क्योंकि उस परमात्मा के प्रकाश से ही सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रादि सभी प्रकाशित होते हैं। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में दीपक का प्रकाश लुप्त

हो जाता है। उसी प्रकार उस अनन्त प्रकाशपुञ्ज के सामने सूर्य का प्रकाश अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता, इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत उस परमेश्वर के प्रकाश के एक अंश से प्रकाशित हो रहा है।

भयादस्याग्निस्तपति, भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युर्धावति पंचमः।। *(2/3/3)*

इसी परब्रह्म के भय से अग्नि तपता है, इसी के भय से सूर्य तपता है और इसी के भय से इन्द्र, वायु और मृत्युदेवता ये सब दौड़–दौड़कर अत्यन्त सावधानी से अपने काम में लगे हुए हैं।

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्त्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु, शरीरत्वाय कल्पते।। *(2/3/4)*

उस सर्व शक्तिमान, सबके प्रेरक और शासक परमेश्वर को यदि कोई साधक अपने देव–दुर्लभ मनुष्य शरीर के नाश होने से पहले पहले जान लेता है, तब तो उसका मनुष्य–जीवन सफल हो जाता है। नहीं तो उसे अनेक कल्पों तक विभिन्न लोकों और योनियों में शरीर धारण करने के लिए विवश होना पड़ता है। अतः शरीर छूटने से पहले–पहले परमात्मा का साक्षात्कार कर लेना चाहिए।

इस प्रकार परमात्म–तत्त्व के रहस्यमय उपदेश को सुनकर नचिकेता यमराज द्वारा बतलाई हुई इस ब्रह्म–विद्या को और सम्पूर्ण योगविधि को जानकर जन्म–मृत्यु के बन्धन से रहित और सब विकारों से शून्य होकर परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्म विद्या को इसी प्रकार जान लेता है, वह भी नचिकेता की भांति जन्म–मृत्यु से रहित तथा सब विकारों से रहित होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

गुरु शक्ति

शरीर की तो बात ही तुच्छ है, सद्गुरु तो अपना आजीवन कठोर तपस्या से प्राप्त अमूल्य पारमार्थिक धन भी शिष्य को बिना किसी हिचकिचाहट के, कुछ भी प्रतिदान की आशा न रखकर सम्पूर्णतः दे देते हैं। शिष्य यदि शुद्ध सत्व और यथार्थ ईश्वर परायण हो तो वह सद्गुरु के आध्यात्मिक शक्ति संचार को भीतर ही भीतर अपने प्राणों में अनुभव कर सकता है, अथवा श्रद्धा और विश्वास के साथ गुरुपदिष्ट साधन पथ पर वह जितना ही आगे बढ़ता है और उसका चित्त जितना ही निर्मल होता जाता है उतना ही वह गुरु शक्ति की महिमा और उनकी कृपा को अपने हृदय में अनुभव कर सकता है।

–स्वामी विरजानन्द

कठोपनिषद से–

नचिकेतोपाख्यान

श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

हमारे आत्मवेत्ता आचार्य महानुभावों ने अपने–अपने ग्रन्थों में परमात्मतत्व का स्थान–स्थान पर वर्णन किया है। उपनिषदों में इस गहन तत्व को विशेष रूप से समझाया गया है। कठोपनिषद् जो कि कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा है, उसमें योग–जिज्ञासा नचिकेता और आचार्य यम के संवाद के रूप में परमेश्वर के रहस्यमय तत्व का विशद् वर्णन किया गया है।

बालक नचिकेता गौतम वंशीय उद्दालक ऋषि का पुत्र था। एक बार उद्दालक ऋषि ने विश्वजित् नामक महान यज्ञ किया और उस यज्ञ में उसने अपना सारा धन ऋत्विजों को दान में दे दिया। ब्राह्मणों को जो गौएँ दान में दी गयीं, उनमें कुछ बूढ़ी भी थीं और कुछ दूध देने योग्य नहीं थीं। यह देखकर बालक नचिकेता को बड़ा दुःख एवं आश्चर्य हुआ। उसने मन ही मन विचार किया–''पिताजी को इस यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर देना चाहिए था, किन्तु उन्होंने मेरा दान नहीं किया, प्रत्युत कुछ उपयोगी गौओं को भी मेरे नाम पर रख लिया है।'' उसने पिता को सावधान करते हुए निवेदन किया–

''पिताजी! आप मुझे किसे देंगे?'' पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। बालक ने दुबारा पूछा, तब भी उसे उत्तर नहीं मिला। तीसरी बार उसने फिर वही प्रश्न किया तो उसके पिता को क्रोध आ गया। वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले–''तुझे मृत्यु को दूँगा।'' पिता की आज्ञा से बालक नचिकेता यमराज के पास चला गया।

तब यमराज कहीं बाहर गये हुए थे। अतः नचिकेता अन्न–जल ग्रहण किये बिना ही तीन दिन तक यम–सदन में यमराज के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा।

जब यमराज आये और उन्हें पता चला कि यह बालक तीन दिन से अनशन किये हुए मेरी प्रतीक्षा में द्वार पर पड़ा है, तो उन्होंने उसका बड़ा स्वागत किया। उन्होंने बालक की कर्त्तव्यनिष्ठा, सत्य–परायणता तथा निर्भीकता आदि गुणों को देखकर प्रसन्न होकर उससे तीन वर मांगने को कहा।

इस पर नचिकेता ने यमराज से प्रार्थना की–हे मृत्युदेव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं तीनों वरों में से पहला वर यह मांगता हूँ कि मेरे पिता उद्दालक जिन्होंने क्रोध के आवेश में मुझे आपके पास भेज दिया और अब अशान्त तथा दुःखी हो रहे हैं, वे मेरे प्रति क्रोध–रहित, शान्त तथा सन्तुष्ट हो जायें और जब आपकी आज्ञा से मैं घर जाऊँ तब वे मुझे अपने पुत्र के रूप में पहचान कर मुझसे पूर्ववत् व्यवहार करें। यमराज से इस वर की

स्वीकृति पाकर नचिकेता ने दूसरे वर में स्वर्गलोक दिलाने वाली अग्नि–विद्या का उसे उपदेश करने की प्रार्थना की। यमराज ने इसे भी स्वीकार कर लिया।

इस लोक के कल्याण के लिए पिता की सन्तुष्टि का वर और परलोक के कल्याण के लिए स्वर्ग–प्राप्ति का साधन अग्नि–विज्ञान का वर पाकर अब तीसरे वर में नचिकेता ने ब्रह्मवेत्ता आचार्य यम से आत्मा का यथार्थ स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय बताने की प्रार्थना की, किन्तु यमराज ने उसकी इस प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए कहा–हे नचिकेता! यह आत्मतत्व बहुत ही सूक्ष्म विषय है। यह सहज में समझ में आने वाला नहीं है। इसे तो देवता लोग भी नहीं समझ सके। तुम बालक इसे क्या समझ पाओगे? अतः तुम इसको छोड़कर इसके बदले कोई दूसरा वर माँग लो।

नचिकेता अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। तब उसकी परीक्षा के लिए यम ने पहले उसे पृथ्वी–लोक के समस्त भोगों का प्रलोभन दिया, फिर स्वर्गीय भोगों का वर्णन करते हुए उनका वरण करने को कहा, किन्तु नचिकेता ने उन समस्त भोगों को ठुकराते हुए कहा–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्योलप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वां।
जीविष्यामो यावदीशिष्यासित्वम्, वरस्तु मे वरणीय स एव।

हे मृत्युदेवता! आप जानते ही हैं कि धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। आपके दर्शन पा लेने के फलस्वरूप अब मुझे जीवनयापन के लिए आवश्यक धन स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा। जब तक आपका शासन रहेगा, तब तक हम जीते भी अवश्य रहेंगे। इसलिए मेरे मांगने योग्य वर तो वह आत्म–तत्व ही है, जिसे बतलाने की मैंने आपसे प्रार्थना की है।

इस प्रकार भलीभांति परीक्षा करके यमराज को जब यह विश्वास हो गया कि नचिकेता परम वैराग्यवान् एवं दृढ़–निश्चयी है तो उसे ब्रह्म–विद्या का उत्तम अधिकारी जानकर उन्होंने उसे ब्रह्म–विद्या का उपदेश दिया। आत्म–तत्त्व की दुर्लभता एवं गहनता का वर्णन करते हुए आचार्य यम अपना उपदेश आरम्भ करते हैं–

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः, शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।
न नरेणावरेण प्रोक्त एष, सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्य प्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणीयान् ह्यतर्क्यमणु प्रमाणात्।।

(1/2/7–8)

जो आत्म–तत्त्व बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलता, जिसको बहुत से लोग सुन कर भी नहीं समझ पाते, ऐसे इस गूढ़ आत्म–तत्त्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है, उसे प्राप्त करने वाला भी कोई विरला ही होता है। जिसने आत्म–तत्त्व को पाकर अपना जीवन सफल बना लिया हो। तत्वदर्शी ज्ञानी महापुरुषों से उपदेश प्राप्त करके उसके अनुसार मनन–निदि ध्यासन करते–करते तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले पुरुष तो

जगत में अत्यन्त दुर्लभ है। अर्थात् आत्म–तत्त्व के सुनने वाले, सुनकर उस पर आचरण करने वाले, उसका यथार्थ वर्णन करने वाले और उसे तत्त्व से जानने वाले महापुरुष इस संसार में आश्चर्यमय हैं।

यह आत्म–तत्त्व इतना गहन है कि जब तक अन्तर्दृष्टा महापुरुष अपने अनुभव के आधार पर इस विषय को नहीं समझाते, तब तक मनुष्य का इस विषय में प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि साधारण ज्ञान वाले मनुष्य यदि इसे बतलाते हैं और उसके अनुसार यदि कोई साधक विविध प्रकार से उसके चिन्तन का अभ्यास करता है तो यह उसकी समझ में बिल्कुल नहीं आता। ज्ञानी महापुरुषों से सुने बिना अपने आप तर्क–वितर्क करने से भी यह आत्म–तत्त्व समझ में नहीं आता, क्योंकि यह विषय सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और तर्क से सर्वथा अतीत है।

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः, प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयँ हि लब्ध्वा, विवृतँ सद्म नचिकेतसं मन्ये।। *(1/2/13)*

मनुष्य को चाहिए कि वह इस धर्ममय उपदेश को पहले तो अनुभवी महापुरुष से श्रद्धापूर्वक सुने और सुनकर उसका मनन करे और फिर एकांत में उस पर विवेकपूर्वक विचार करते हुए उसे अपने चिंतन का विषय बनाये। इस प्रकार अभ्यास करते हुए जब साधक इस आत्म–तत्त्व को अनुभव कर लेता है, तब वह आनन्दस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को पाकर आनन्द में ही मग्न हो जाता है।

यमराज नचिकेता को प्रोत्साहित करते हुए कह रहे हैं–हे नचिकेता! तुम जैसे परम विरक्त एवं निष्ठावान साधक के लिए तो मैं परमधाम का दरवाजा खुला हुआ समझता हूँ।

आचार्य यमराज से आत्म–तत्त्व की दुर्लभता सुनकर तथा अपने को उसका अधिकारी जानकर नचिकेता के मन में परमात्म तत्त्व की जिज्ञासा तीव्र हो गई। इसलिए उसने यमराज से पुनः निवेदन किया–

हे भगवान! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो धर्म और अधर्म के सम्बन्ध से रहित, कार्य–कारण रूप प्रकृति से पृथक् एवं भूत, वर्तमान और भविष्यत् इन सबसे भिन्न जिस परमात्म–तत्त्व को आप जानते हैं, वह मुझे बताने की कृपा करें।

बालक नचिकेता के प्रश्नानुसार यमराज परमात्मतत्त्व का वर्णन करते हुए कह रहे हैं–

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको, धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।। *(1/2/20)*

हे नचिकेता! वे परब्रह्म परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और महान से भी महान हैं। वे सर्वव्यापी होते हुए भी इस जीवात्मा के हृदयरूपी गुफा में निवास किया करते हैं। परमात्मा की उस महिमा को कामनारहित और चिन्तारहित कोई बिरला साधक उस परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष, आत्मा विवृणते तनूं स्वाम्।। *(1/2/23)*

ये परमात्मा न तो उन लोगों को मिलते हैं जो शास्त्रों को पढ़–सुनकर अपने को ज्ञानी समझते हुए दूसरों को प्रभावित करने के उद्देश्य से उस परमात्म–तत्त्व का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं। न उन तर्कशील बुद्धिमानों को मिलते हैं जो परमात्मा के विषय में बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो केवल उसी के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, जिनको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं। वे स्वीकार उसे करते हैं, जो अपनी या साधना पर निर्भर न रहकर उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है। ऐसे साधक पर वे भक्त–वत्सल कृपा किया करते हैं और अपनी योग–माया का परदा हटाकर अपना यथार्थ स्वरूप उसके सामने प्रकट कर देते हैं।

उपरोक्त मन्त्रों में परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का वर्णन किया गया तथा यह बतलाया गया कि वे परमात्मा किसे प्राप्त होते हैं। अब यह बताया जा रहा है कि वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा किन साधनों से प्राप्त किये जा सकते हैं। यहाँ रथ और रथी का दृष्टान्त देकर योगवेत्ता यमराज मनोनिग्रह पर बल देते हुए कहते हैं–

आत्मानं रथितं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च।।

इन्द्रियाणि ह्यानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान्।

आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं, भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। (1/3/3–4)

हे नचिकेता! जीवात्मा को तो तुम रथ का सवार समझो, शरीर को रथ समझो, बुद्धि को रथ का हाँकने वाला समझो और ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ ही उस रथ को खींचने वाले घोड़े हैं और सांसारिक विषय उन घोड़ों के विचरने का मार्ग है तथा शरीर, इन्द्रिय और मन इन सबके साथ रहने वाला जीवात्मा ही उन विषयों का भोक्ता है।

यस्त्वविज्ञानवान भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि, दुष्टाश्वा इव सारथेः।। *(1/3/5)*

जो व्यक्ति विवेकहीन बुद्धि वाला और चंचल मन वाला होता है, उसकी इन्द्रियाँ असावधान सारथी के दुष्ट घोड़ों की भाँति वश में न रहने वाली हो जाती हैं। इसके विपरीत–

यस्तु विज्ञानवान् भवति, युक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि, सदश्वा इव सारथेः।। *(1/3/6)*

जो व्यक्ति विवेकयुक्त बुद्धि वाला होता है और अपने वश में लिये हुए मन से अपनी इन्द्रियों को निरन्तर सन्मार्ग पर चलाने की चेष्टा करता रहता, उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथी के श्रेष्ठ घोड़ों की भांति सदा उसके वश में रहती हैं।

योग-शास्त्र में मुद्रा

डॉ. ऋषिराज वाशिष्ठ

मुद्रा शब्द संस्कृति के मुद्र धातु से बना, जिसका अर्थ विनाश करना अर्थात् विनाश का अभिप्राय: पंच क्लेशों के निवारण से है। जिसके द्वारा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेष का नाश होता है उसी को मुद्रा कहते हैं। मुद्रा शब्द का अर्थ व्यापकता से त्रिताप आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक कोशों की निवृत्ति से लिया गया है।

योगाचार्य ने योग-साधना को 8 भागों में विभक्त किया है, 5 बाह्य साधना के अन्तर्गत आते हैं-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान समाधि अन्तरंग योग के अन्तर्गत आते हैं। आचार्यों ने मुद्रा की उपादेयता को भी बहिरंग योग में माना है। उन्होंने प्राणायाम से भी उपयोगी मुद्राओं को माना है।

आसन व प्राणायाम के बीच की स्थिति को ही मुद्रा कहते हैं। योग के चरम लक्ष्य के प्राप्त करने के लिए आसनों के साथ ही साथ प्राणायाम की जो क्रिया की जाती है उस स्थिति को मुद्रा कहते हैं। घेरण्ड संहिता के अनुसार 25 मुद्राएँ हैं, परन्तु अन्य ग्रन्थों में 23 मुद्राओं का वर्णन मिलता है, जिसमें 10 प्रमुख हैं जो निम्नलिखित हैं-

महामुद्रा महाबन्धों-महावेधश्च खेचरी।
उड्यानं मूलबन्धश्च, बन्धो जालन्धराभिहः।।
कर्ण विपरीताख्या, बज्रोलो शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रा दशकं, जरा मरणं नाशनम्।।

(1) महामुद्रा, (2) महाबन्धों, (3) महावेध, (4) खेचरी मुद्रा, (5) उड्डियान बन्ध, (6) मूलबन्ध मुद्रा, (7) जालन्धर बन्ध, (8) विपरीत करणी, (9) ब्रजोली, (10) शक्तिचालिनी मुद्रा।

(1) महामुद्रा-सर्वप्रथम बैठकर दोनों पैरों को सामने ले आते हैं। तत्पश्चात् बायें पैर को घुटने से मोड़ते हुए ऐड़ी के सींवनी नाड़ी से लगाते हैं, उस स्थिति में जननेन्द्रिय गुदा-द्वार के बीच में जो स्थान है उस पर दबाव पड़ना चाहिए। तदुपरान्त विपरीत पैर का अंगूठा बायें हाथ से पकड़ते हैं। दाहिने हाथ की मुद्रा बनाकर जो पैर सामने स्थित है, उसी नाशारन्ध से बिना आवाज किये हुए श्वांस का पूरक करते हैं। जैसे-जैसे श्वांस भरते हैं, पेट बाहर की ओर फूलता जाता है। श्वांस पूरक के उपरान्त ठेड़ी कण्ठकूप से लगाते हैं, अर्थात् जालन्धर बन्ध लगाते है, आँखें बन्द करते हैं। साथ ही साथ मूलबन्ध लगाते हैं, फिर मुद्रा वाले हाथ से फैले हुए पैर के अंगूठे को पकड़ते हैं। आगे झुककर माथे को घुटने से लगाते हैं। इस स्थिति में दोनों पैर के घुटने एवं दोनों हाथ की कोहनियाँ जमीन को स्पर्श

करती हुई होंगी। यथा सम्भव श्वांस को रोकने के पश्चात् मुद्रा वाला हाथ पैर से उठाते हुए नाक पर ले आते हैं कमर सीधी करते गर्दन को सीधी करते हुए जालन्धरबन्ध हटाते हैं। आँखें खोलते हैं मूलबन्ध को ढीला छोड़ते हुए मुड़े हुए पैर की तरफ से अर्थात् बायीं नासिकारन्ध्र से श्वास का रेचन करते हैं, इस स्थिति में धीरे–धीरे उड्डियानबन्ध लगाते हैं। इसके पश्चात् बायें पैर को सामने स्थित करते हुए दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उपरोक्त विधि से श्वास का पूरक व रेचन करते हैं। इस मुद्रा–अभ्यास में भी मात्रा 142 का ध्यान रखना चाहिये।

लाभ–

क्षय कुष्ठ मुद्रा वते, गुल्माजीर्ण पुरोगका।
तस्य दोषा क्षयं याति, महामुद्रा तुपोभ्यसेत्।।

महामुद्रा के अभ्यास से क्षय रोग, कुष्ठ रोग, चर्मरोग, गुदा रोग से सम्बन्धित रोग अजीर्णादि बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। इसके साथ ही साथ अविद्या, अस्मिता, राग–द्वेष, अभिनिवेष आदि पञ्च क्लेशों का नाश होता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य प्राप्ति होती है। ऊर्ध्वगामी होता है, चेहरा कांतिमान होता है। शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शासन की प्राप्ति होती है। फेफड़ों से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं। जैसे–फेफड़ों, आमाशय, गुर्दे की कार्यक्षमता बढ़ जाती है, हार्निया, अल्सर अपच आदि रोगों को ठीक करता है। मानसिक रोगियों के लिए लाभदायक है। गुदा से जैसे बवासीर, भगन्दर तथा मूत्रद्वार से सम्बन्धित रोग स्वप्न–दोषादि ठीक होते हैं। कील मुहासे तथा कण्ठ से सम्बन्धित रोगों के लिए यह मुद्रा लाभप्रद है। संक्रमण ज्वर को ठीक करने में लाभकारी है।

सावधानियाँ–उच्च रक्तचाप, हृदय रोगी, मेरुदण्ड में दर्द वालों के लिए यह वर्जित है।

महाबन्ध मुद्रा–गौ मुखासन में स्थित होकर दोनों हाथों को आपस में बाँधते हुए भुजबन्ध को पकड़ते हैं। कमर, गर्दन सीधी रखते हुए, सामने देखते हुए दोनों नाशरन्ध्र से बिना आवाज के साथ श्वांस का पूरक करते हैं। श्वासं लेने के साथ ही साथ पेट को बाहर की ओर फुलाते हैं, आँखें बन्द करते हैं जलन्धर बन्ध लगाते हैं, इसमें मूलबन्ध स्वतः ही लग जाता है। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि गौ मुखासन के जो पैर ऊपर की तरफ होता है उसी हाथ को भुजबन्ध पकड़ने की स्थिति में ऊपर रखते हैं।

यथासम्भव श्वांस को रोकने के पश्चात् जलंधर बंध लगाते हैं, आँखें खोलते हैं। दोनों नाशारन्ध्रों से बिना आवाज के साथ–साथ श्वांस का रेचन करते हैं। रेचक स्थिति में उड्डियान बन्ध लगाते हैं, इसमें भी मात्रा का अनुपात होता है। इसके पश्चात् हाथ–पैर की स्थिति को बदलकर यह क्रिया की जाती है।

लाभ–

कालपाश महाबन्ध, विमोचन विचक्षण।
त्रिवेणी संगमम् धन्ते, केदारं प्राप्येन्मनः।।

महाबंध मुद्रा मृत्यु के भय से छुटकारा दिलाने में अद्भुत है। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, के संगम पर मन एकाग्र होता है अर्थात् यह मुद्रा चित्त की एकाग्रता में सहायक है। भक्ति–सागर में कहा है–

महाबन्ध करें अभ्यासा, अमृत चेतबुझे न प्यासा।
जरामृत्यु देही नहीं आवे, महाबन्ध तीनों गुण लावे।।

साथ ही साथ कुण्डलिनी जागृत करने में सहायक है, प्राण का प्रवेश मूलाधार चक्र में होने लगता है, जिससे चक्र भेदन का मार्ग खुल जाता है, ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है, फेफड़ों से सम्बन्धित रोग जैसे दमा, कफादि दूर करता है, यही सबसे बड़ा बन्ध है, इसीलिए महाबन्ध कहते हैं।

सावधानियाँ–उच्च रक्तचाप, हृदयरोगी इस मुद्रा अभ्यास कराते समय कमर, गर्दन सीधी होनी चाहिए।

महावेध–पद्मासन में स्थित होकर दोनों हथेलियों को जँघा के बगल में स्थित करते हैं। कमर–गर्दन सीधी रखते हुए दोनों नासारन्ध्र से बिना आवाज के साथ श्वांस का पूरक करते हैं। श्वांस की गति के साथ ही साथ पेट को बाहर की ओर फुलाते हैं। तदुपरान्त जालन्धर बंध लगाते हैं, आँखें बन्द करते हैं, दोनों ही स्थिति में नितम्ब पृष्ठ को जमीन पर बार–बार प्रताड़ना देते हैं। न रोक पाने की स्थिति में ताड़ना देना बन्द करके जालंधर बंध हटाते हैं, आँखें खोलते हैं। बिना आवाज किये हुए दोनों नासारन्ध्र से श्वांस का रेचक कर देते हैं। इसी प्रकार इस क्रिया को बारम्बार दोहराते हैं।

लाभ–

महाविधो यमभ्यासात्, महासिद्धि प्रदायकः।
बली पलित वेपत्रः, सेकते साधको तमः।।

महावेध के अभ्यास से महान सिद्धियों की प्राप्ति होती है। इससे अभ्यासियों के शरीर में झुर्रियाँ नहीं पड़ती तथा बाल सफेद नहीं होता, अर्थात् महावेध मुद्रा के अभ्यासी को जरा–मृत्यु पर अधिकारी हो जाता है। इसके बारे में कहा गया है–

रूप यौवन सम्पन्न यथा स्त्री पुरुष बिना,
महामुद्रा महाबन्धौ निष्फलौ वेध वर्जितो।

अर्थात् जैसे सौंदर्य एवं युवावस्था से संपन्न नारी की पूर्णता पुरुष बिना नहीं होती। उसी प्रकार महाबन्ध व महामुद्रा का अभ्यास बिना महावेध मुद्रा के अभ्यास से निष्फल होता है। शारीरिक उपयोगिता हकलाहट के लिए अच्छा है, बालों का पकना झड़ना आदि दूर हो

जाते हैं।

खेचरी मुद्रा–

विधि–खेचरी मुद्रा करने से पहले इसकी विधि के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है। जैसे चौवस्त चूर्ण–सैंधा नमक हर्र (बड़ी) सोंठ आदि वस्तुओं को कपड़े में छानकर एकीकृत करके चौवस्त का चूर्ण बनाते हैं।

ताते जल के कुरले करि जुब गाइये।
ता पाछे चौवस्त चूर्ण लगाइये।।
जिह्वा हाथ में पकरि गर्दन छिलन करे।
दोहन तानन करै, बहुरि दशानन धरै।।
फिरि करि छिलन ताहीं छेद नहीं कीजै।
तो तु ज्यों कटि जाय जसन सोई लीजै।।
ब्रह्मरन्ध्र को धोय केरि मैल नितारिये।
बायें अँगूठे ऊपर काग को धारिये।।
सहज–सहज सरकाय के आगे लाइये।
ये ही सब साधन कठिन गुरु से पाइये।।
दो उँगली की कूँची सुकुरि मेलना।
जिह्वा उलटि राख जु नित प्रति खेलना।।
यह उपाय षट्मास करै तजि मानही।
रसना यों बँधि जाय चौ अस्थान ही।।

साधारणतया जिह्वा तीन प्रकार की देखी गई है–

(1) सर्प जिह्वा, (2) गौ जिह्वा, (3) माण्डूकी जिह्वा।

जिनकी सर्प जिह्वा होती है उन्हें खेचरी में तीन मास में सफलता मिलती है। जिनकी गौ–जिह्वा होती है उन्हें तीन मास में सफलता मिलती है और जिनकी मेंढक जिह्वा होती है उन्हें छः मास में खेचरी में सफलता मिलती है।

'खे' से तात्पर्य है आकाश और 'चरि' से तात्पर्य विचरण करने से है अर्थात् जो प्रक्रिया के माध्यम से मन आकाश अर्थात् ब्रह्म में विचरण करते हैं उस प्रक्रिया का नाम है खेचरी मुद्रा।

अन्तः कपाल कुहरे, जिह्वा व्यात्तृत्य धारयेत्।
भ्रूमध्य दृष्टिश्ययेषा, मुद्रा भवति खेचरी।।

अर्थात् जिह्वा को उल्टी लिटाकर कपाल कुहर में प्रवेश कराकर भ्रूमध्य दृष्टि रखने को ही खेचरी मुद्रा कहते हैं।

जिसकी खेचरी सिद्ध हो जाती है अथवा जब जिह्वा कपाल कुहर में प्रविष्ट हो जाती

है, तब साधक को षटरस आस्वादन मिलता है। जैसे लवण कटु अम्लीय दुग्ध मधु घृत।

सक्षारा कटुकाम्ल दुग्धसदृशी मध्वाश तुल्य तथा खेचरी मुद्रा के महत्त्व के बारे में शास्त्र में उल्लेख है–

न रोगो मरणं तन्द्रा, न निधनं क्षुधा तृषा।
न च मूर्छा भवेत्तस्य, यो मुद्रा वेत्ति खेचरी।।

खेचरी के सिद्ध हो जाने पर साधक को कोई भी रोग नहीं सताते, न वह मृत्यु की पीड़ा से बाधित होता है। इसके साथ ही साथ न तो उसे आलस्य आता है और न ही भूख, प्यास और मूर्छा से पीड़ित होता है।

खेचरी के सिद्ध होने पर साधक का मन एकाग्र होता है, उसे सर्पादि विषैले जन्तुओं से कोई भय नहीं सताता। खेचरी के अभ्यासी का ध्येय मूल प्रकृति एवं परमात्मा है। उसी प्रकार खेचरी मुद्रा सर्व मुद्रा में सर्वश्रेष्ठ है।

गोमासं भवेत् नित्यम्, पिवेद् अमरवारुणी।
कुलीनं तमहं मन्ये, चेतरे कुलघातका:।।

अर्थात् प्रतिदिन गाय का मांस भक्षण करना चाहिए, जो प्रतिदिन गोमांस का भक्षण करता है वारुणी अर्थात् मदिरा को पीता है, ऐसा योगी कुलीन माना गया है अन्य सबकी गणना कुल घातक में आती है। गो शब्द से तात्पर्य जिह्वा से है। जिह्वा को उल्टी करके कपाल कुहर में लगाने के उपरान्त वहाँ से स्रावित होने वाले अम्ल रस का आस्वादन करना वारुणी–पान माना गया है।

खेचरी के सिद्ध हो जाने पर साधक संयम में रहते हुए भी समाधि लगा सकता है। साधक में खेचरी तत्त्व की सिद्धि आ जाती है, इस क्रिया के अभ्यास से हकलाहट दूर होती है क्योंकि दोहन–चालन क्रिया हकलाहटी व्यक्ति के लिए लाभकारी है।

उड्डियान बन्ध मुद्रा–पद्मासन में स्थित होकर नाभि के ऊपर व निचले हिस्से को दोनों नासारन्ध्रों से श्वांस निकालने के उपरान्त इतना खींचें कि पेट पीठ से लग जावे, ऐसी स्थिति को उड्डियान बन्ध कहते हैं। उड्डियान बन्ध में बँधा हुआ प्राण निश्चय ही सुषुम्नावाही होता है। जिस प्रकार आकाश में पक्षी उड्डियान बन्ध के प्रभाव से मृत्यु पर विजय प्राप्त करके निर्लिप्त जीवन व्यतीत करता है।

लाभ–

वृद्धो पित्तख्यायेत्, उड्डियानं तु सहज।
गुरुणा कथितं सदा, अभ्यसेत्सततं यस्तु।।

अर्थात् उड्डियानबन्ध के निरन्तर अभ्यास से वृद्ध भी तरुण जैसा दिखाई देने लगता है।

फेफड़ों की दूषित वायु बाहर निकल जाती है, उदर से सम्बन्धित रोग कब्ज अपच

वायु विकार अम्लतादि दूर हो जाते हैं।

मूलबन्ध मुद्रा–

पद्मासन में स्थित होकर आंतरिक बल लगाते हुए गुदा–द्वार को संकुचित करके रोकने की स्थिति को ही मूलबन्ध कहते हैं। इसके बारे में भक्ति–सागर में कहा गया है–

मूलबन्ध जानिए ही ऐड़ी गुदा लगाय।
थक दाहिने बांयी कभी सिद्धासन ठहराय।।

लाभ–

अपान प्राणयोरैक्यं, अल्पो मूत्र पुरीषयो।
युवा भवति वृद्धोऽपि, सततं मूलबन्धनात्।।

अर्थात् मूलबन्ध के अभ्यास से अपानप्राण की एकता होती है, मल और मूत्र की अल्पता होती है। निरन्तर मूलबन्ध का अभ्यास करने से वृद्ध भी युवा के सदृष्य हो जाता है।

मूलबन्ध मुद्राभ्यास करने से गुदा से सम्बन्धित रोग जैसे बवासीर भगन्दर ठीक हो जाते हैं। अभ्यासी को दीर्घायु प्राप्त होती है एवं इससे हृदय की कार्यक्षमता की वृद्धि होती है।

जालन्धर बन्ध मुद्रा–

कंठ संकोचनं कृत्वा, चिबुकं हृदयं नयसेत्।
जालन्धरे कृते बन्धे, षोडषाधार बन्धनम्।।

कण्ठदेश संकोचनपूर्वक हृदय में ठोड़ी को हृदय में लगाने को ही जालंधर बंध कहते हैं। इसके द्वारा षोडसाधार रन्ध साधित होता है एवं मृत्यु को जय करते हैं।

लाभ–जालंधर बंध मुद्रा के अभ्यास से गले से सम्बन्धित समस्त रोग दूर हो जाते हैं। इसका अभ्यासी बुढ़ापा और मृत्यु से भयभीत नहीं होता है। इसके अभ्यास करने से कपाल कुहर से जो अमृत–रस निकलता है, वह नाभि में स्थित सूर्य में जाकर भस्म नहीं होता, जिससे साधक दीर्घायु को प्राप्त करता है। इस मुद्रा के अभ्यास से ग्रन्थियों की क्षमता बढ़ जाती है, तथा कंठ मधुर होता है।

विपरीतकरनी मुद्रा–

नाभि मूल में सूर्य और तालु मूल में चन्द्र है, ब्रह्मरन्ध्र में अमृत धारा का प्रवाह बहता है। सूर्य नाभि में स्थित सूर्य वही अमृत–रस पान कर लेते हैं, जिससे धीरे–धीरे प्राणी क्षय को प्राप्त हो जाता है, परन्तु चन्द्र का अमृत पान करने पर मृत्यु का भय नहीं रहता। आँख एवं सूर्य के ऊपर और चन्द्र को नीचे करे तो सर्वमय क्लेश नाश होता है। यही विपरीतकरनी मुद्रा सब प्रकार गोपनीय है।

सिर को भूमि में लगाकर दोनों पैरों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकें

इस स्थिति को ही विपरीतकरनी मुद्रा कहते हैं। इसका नित्य अभ्यास करने से वृद्धावस्था व मृत्यु नष्ट होती है और इसके अभ्यास करने वाला सब लोगों में सिद्ध–सम्पन्न एवं प्रलय में भी समभाव रहते हैं।

लाभ–

करनी विपरीताख्या सर्वाधिव्याधि विनाशिनी।

यह विपरीतकरनी नाम की मुद्रा सभी आधिव्याधि का नाश करने वाली है। 'नित्य–अभ्यास युक्तस्य जठराग्नि विवर्धिनी।' इसके नित्य अभ्यास से जठराग्नि वृद्धि को प्राप्ति होती है।

बज्रोली मुद्रा–

इस मुद्रा के अभ्यास से बिन्दु वज्र के समान स्थिर हो जाता है, इसलिए इसे बज्रोली मुद्रा कहा गया है। शीशा, सोना, चाँदी, रांगा, तांबा, पीतल की नली जो दो सूत मोटी और चौदह अँगुल लम्बी होती है। साथ ही साथ रबर के केथेटर जो कि 2 नम्बर 4, 6, 8, 10, 12 के होते हैं, जो कि प्रयोग में लाया जा सकता है। 1/2 चम्मच शुद्ध घी और 1 जग गुनगुना पानी की आवश्यकता होती है। जलाशय या नदी में भी इसका अभ्यास किया जा सकता है।

विधि–उत्कट आसन में स्थित होकर इस मुद्रा का अभ्यास करते हैं। सर्वप्रथम नली के अग्र भाग पर घी लगाते हैं, उपस्थ अर्थात् मूत्र द्वार से धीरे–धीरे नली को प्रवेश करवाते हैं। शुरू में 2 या 4 नम्बर नली से एक ही अंगुल प्रवेश कराते हैं, 8 अंगुल प्रवेश करने के पश्चात् मूत्राशय में नली जाने पर मूत्र बाहर आ जाता है। मूत्राशय में नली प्रवेश करने के पश्चात् सर्वप्रथम गुनगुने पानी को खींचने का प्रयास किया जा सकता है। 4 दिन तक गुनगुने पानी से प्रयास करने के पश्चात् शुद्ध गुनगुना दूध या धारोष्ण दूध तत्पश्चात् तिल का तेल या शुद्ध पारा खींचने का प्रयास करते हैं। जब साधक के अन्दर पारा खींचने की शक्ति आ जाती है, तब वह रज खींच सकता है समझ लेना चाहिए। इस मुद्रा के अभ्यास से साधक के शरीर में स्थित बिन्दु बाहर नहीं निकलते हैं। फलस्वरूप साधक का मन एवं शरीर वज्र–तुल्य कठिन हो जाता है।

लाभ–

सुगंधो योगिनो देहे, जायते बिन्दु धारणात्।
यावत्त बिन्दु स्थिरो देहं, तावत् कालं भयकुतः।।

अर्थात् बज्रोली मुद्राभ्यास से योगी का शरीर सुगन्धित व कान्तिमान होता है, बिंदु वज्रवत होता है, काल पर विजय प्राप्त की जाती है, दीर्घायु की प्राप्ति होती है, गुप्त रोगों पर विजय पाई जा सकती है, स्वप्न–दोष, गर्भपात, प्रजनन शक्ति की कमी का निदान होता है। इसका अभ्यास किसी योग्य गुरु के निरीक्षण में करना चाहिए।

सावधानियाँ–(1) बज्रोली का अभ्यास करते समय जो सोने, चाँदी या रबर की नली

जननेन्द्रिय में प्रवेश कराते हैं, तब अति सतर्क रहना चाहिए, क्योंकि जननेन्द्रिय में प्रवेश करवाते समय मूत्र नली की क्षति होने की सम्भावना रहती है।

(2) नली पहले दिन 2 या 3 इंच से ज्यादा नहीं प्रवेश करना चाहिए।

(3) 4 नम्बर की नली 2–3 की नली तक अभ्यास करना चाहिए। साधारणतया पहले 4 नं. कैथेटर व्यवहार कर सकते हैं।

(4) नली प्रवेश करते समय पौरुषग्रन्थी में होकर प्रवेश करते हैं। इसलिए साधक को सतर्क रहना चाहिए नहीं तो नपुंसक होने की सम्भावना रहती है।

(5) बज्रोली के 2 या 4 मास अभ्यास के बाद काम–वासना का उदय शरीर में होता है, उस समय साधक को स्वयं को वश में रखना चाहिए।

(6) पौष्टिक आहार जैसे घी, मक्खन, दूध आदि तथा फलों का रस साधक को सेवन करना चाहिए।

(7) जब नली 12 अँगुल प्रवेश करवाने के बाद मूत्र बाहर आये तो समझें 'पाइप' सही जगह पहुँच गया है।

शक्तिचालिनी मुद्रा–

जिस मुद्रा के अभ्यास से शक्ति चलती है, उसे शक्तिचालनी मुद्रा कहते हैं–

मूलाधारे आत्मशक्ति, कुण्डलिनी पर देवता।
सायिता भुजङ्गाकार, साधं त्रिवलयान्वितता:।।
यावत् सा देहं, तावतज्जीवो पशुसंज्ञया।
ज्ञानं न जायते निद्रिता व, तावत् कोटियोगं समभ्यसेत्।।

अर्थात् मूलाधार में जो कुण्डलिनी शक्ति साढ़े तीन लपेट लगाये हुए सर्पिणी के रूप में सो रही है, उसके सुप्त रहने पर मनुष्य पशु अज्ञानी की अवस्था में रहता है। इसलिए जब तक ज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक अभ्यास करते रहना चाहिए। जिस प्रकार कुञ्जी से ताला खुलने पर ही किवाड़ खुलता है, वैसे ही कुण्डलिनी के जागरण होने पर ही ब्रह्मपथ खुल सकता है। साधारणतया जिस मुद्रा के अभ्यास से कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है, उसे शक्तिचालिनी मुद्रा कहते हैं।

विधि– **नासाभ्याम् प्राणकृष्य, अपाने योजयेदेवलात्।**
तावदाकुंचयेद गुह्म्याम्, शैशरशिवनी मुद्रया।।

अर्थात् प्राण का नासिका छिद्र द्वारा भीतर खींचना, फिर अपान को ऊपर की ओर प्रेरण कर उड्डियान बन्ध द्वारा मिलाना चाहिए। इस स्थिति को कुछ समय बनाये रखने के लिए आश्विनी मुद्रा का अभ्यास करना कठिन है। गुदा–द्वार को संकोचन और विस्तार से सुषुम्ना नाड़ी प्रवाह का प्रारम्भ है। गुदा–द्वार को बार–बार संकोचन करने का नाम ही आश्विनी मुद्रा है।

महादेवस्ततः स्मृतः

एकान्ते मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च।
प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम्।।
ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत्।।
यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमद्वयम्।
योऽन्तरात परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः।।
एव देवो महादेवः केवलः परमः शिवः।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तारं परम्।।
यस्मान्महीयते देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः।।

एकका ही अन्न भक्षण करने, मधु ग्रहण करने, नव श्राद्ध सम्बन्धी अन्न तथा प्रत्यक्ष लवण खाने पर प्राजापत्यव्रत को (पाप की) शुद्धि का उपाय बतलाया गया है। निरन्तर ध्याननिष्ठ पुरुष के सभी पातक नष्ट हो जाते है, इसलिये महेश्वर का ज्ञान प्राप्त कर इनके ध्यान में परायण रहना चाहिए। जो ब्रह्म परम ज्योति रूप, सभी का अधिष्ठान, अक्षर अद्वितीय है तथा जो सभी के भीतर स्थित है, परम ब्रह्म है, उसे महेश्वर जानना चाहिये। ये ही महेश्वर देव, महादेव एवं अद्वितीय परम शिव हैं। ये ही अविनाशी, अद्वित हैं और ये ह। आदित्य के भीतर प्रतिष्ठित परम (तत्त्व) हैं। आत्मयोग नाम से प्रसिद्ध, स्वप्रकाश, नित्य–ज्ञान नाम से भी विख्यात, परम तत्त्वरूप अपने धाम में सर्वाधिक पूजनीय–रूप से ये महेश्वर प्रतिष्ठित हैं, इसीलिये महादेव कहे गये हैं।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

कृष्ण–ध्यान ही दिव्य

जीव की दृष्टि से संसार के वैभव का ध्यान राग का कारण है। उसमें राग से वासना और वासना से आसक्ति जन्म बन्धन होता है, किन्तु श्रीकृष्ण के वैभव का ध्यान करने पर राग-द्वेष, वासना या बन्धन नहीं होते। उल्टे उनके ध्यान से संसार के वैभवों से वैराग्य हो जाता है। श्रीकृष्ण के वैभवों पर दृष्टि जाती है तो संसार का बड़े-से-बड़े वैभव अत्यन्त तुच्छ मालूम पड़ता है। वह संसार के वैभव का अभिमान और उसमें राग मिटाने का उपाय है। वह संसारिक वैभव से वैराग्य कराकर श्रीकृष्ण से राग कराता है, अतएव 'दिव्य' है।

-श्री स्वामि अखण्डानन्द सरस्वती

प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566